Year 8, Issue 31
July-Sept., 2011

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR - PUBLISHER : SNEH THAKORE

कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

संपादन व प्रकाशन
स्नेह ठाकुर

वर्ष ८ - अंक ३१, जुलाई-सितम्बर २०११

आमंत्रण

महात्मा वेदभिक्षु:

मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमंत्रण दे रहा हूँ।
और सबको साथ चलने के लिए भी कह रहा हूँ।।
आज जो मिल जाएँ मुझको 'प्राण' के सामान सारे,
मैं मिटा पाऊँ जगत् से कष्ट के व्यवधान सारे।
आज सपनों में नहीं, मैं सच बना दूँ शांतिगाथा,
हर्ष औ' उल्लास ले मैं फिर चलूँ आभा बिछाता।
विश्व मेरे साथ आए, मैं सभी कुछ सह रहा हूँ,
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमंत्रण दे रहा हूँ।।

रक्त कण से लिख रहे हैं आज जो जग की कहानी,
स्वयं मिटकर भी मिटा दूँ, क्यों न मैं उनकी निशानी।
क्यों न मैं सागर पलट कर विश्व के सब पाप धो दूँ,
जो बचे तब शेष भू पर, मैं उसी में दीप्ति खो दूँ।
दीप्ति से सब जगमगाएँ, कामनाएँ ले रहा हूँ,
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमंत्रण दे रहा हूँ।।

विश्व के व्याकुल, पतित भय-ग्रस्त नर फिर से जगेंगे,
जो दबाए चिर युगों से, वे उभरते अब उठेंगे।
रोक पाए कौन उनकी चाल को जो ज्ञान चाहें,
कौन ऐसा है जगत् में, जो सबल की राह आए।
पाप की, अभिशाप की, मैं श्रृँखलाएँ खो रहा हूँ।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमंत्रण दे रहा हूँ।।

यह विजय, जो स्वर भरे आकुल हृदय में मुस्कुराता,
दीनता की क्रूर गलियों में फिरे ना बिलबिलाता।
एक भी प्राणी जगत् में कह न पाए मैं व्यथित हूँ,
रोग से, या भूख से, या क्षुब्ध चिन्ता से ग्रसित हूँ।।
स्वर्ग जो साकार लाए, 'लहर' उसकी ला रहा हूँ।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमंत्रण दे रहा हूँ।।

रुढ़ियों का नाश, मेरा स्वप्न होगा, ध्येय होगा,
गंदगी के कीट से किसका भला क्या नेह होगा!
लड़खड़ाती मूक, जर्जर भेद भावों की चिताएँ,
आज आओ सब मिलें, मिल कर उसे ऐसे जलाएँ।।
शेष हों सब शून्य केवल, मौन चिंतन कर रहा हूँ।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमंत्रण दे रहा हूँ।।

है निमंत्रण, आज लाखों बंधुओं को भी हमारा,
है निमंत्रण, कोटि बहनों को, हृदय ने भी पुकारा।
प्राण संसृति के बिलखते, माँगते हैं, भीख तुमसे,
खाद बन-बन मिट सकोगे? पूँछता हूँ आज तुमसे!
तुम मिटो, फूले जगत् यह, यह निमंत्रण दे रहा हूँ।
मैं विजय की मुग्ध लहरों को निमंत्रण दे रहा हूँ।।

वसुधा

संपादन व प्रकाशन : स्नेह ठाकुर

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
संपादकीय		२
वन्दे मातरम की रचना कब, कैसे और क्यों?	राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह	६
काव्य की सर्जना	कृष्णमुरारी 'विकल'	९
निज भाषा में ही देश की अस्मिता की पहचान	सिद्धेश्वर	१०
शब्द	डॉ. सन्तोष खन्ना	१२
सड़क की लय	डॉ. सुषम बेदी	१४
ग़ज़ल	देवकी नन्दन 'शांत'	२२
हाँ मैं औरत हूँ	डॉ. मधुरिमा सिंह	२३
प्रीत न जाने कोय	विजय अस्थाना	२४
परख	आस्था नवल	२६
भारतीय स्वाधीनता संग्राम और महर्षि अरविन्द	उपेन्द्र नाथ 'अनन्य'	२७
राष्ट्र	डॉ. तुकाराम वर्मा	३३
जनतंत्र	रमाशंकर सिंह	३४
चाँदनी चौक की जुबानी	अलका सिन्हा	३६
मानव जीवन	शिवराम तिवारी 'शिव'	४०
कल्पना का रहस्य लोक - रुद्रनाथ	डॉ. हेमा उनियाल	४१
यह तुंग हिमालय मेरा है	डॉ. श्याम सिंह शशि	४२
कवियों का भोलापन	अनिल जोशी	४३
वाणी-वन्दना	महेश प्रसाद पाण्डेय 'महेश'	४४
आमंत्रण	महात्मा वेदभिक्षु:	१ अ
ग़ज़ल	डॉ. दीपंकर गुप्त	४४ अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :
16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534
वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00
डाक द्वारा By Mail.....$35.00
Website: http://Vasudha1.webs.com
e-mail: sneh.thakore@rogers.com

संपादकीय

परम प्रिय कमला सिंघवी जी के वैयक्तिक व साहित्यिक सान्निध्य से शुरू हुई भारत यात्रा आनंददायी रही. जहाँ एक ओर कमला जी का ठाकुर साहब व मुझसे अनेक सुस्वादु व्यंजनों को खाने का पुन:-पुन: आग्रह जिह्वा को रसप्लावित करता रहा, वहीं साहित्यिक विचार-विमर्श मन मस्तिष्क को. सिंघवी जी की स्मृति-उपस्थिति हम तीनों के बीच दर्ज़ होती रही. ठाकुर साहब व मैं कमला जी की आत्मीयता के सदैव आभारी हैं.

श्री तेजेंद्र शर्मा, श्री अजित राय एवं डॉ. सुषमा आर्य के सौजन्य से डी.ए.वी. कॉलेज, यमुना नगर में एक अत्यन्त सफल अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन सम्पन्न हुआ. तीनों ही संयोजकों ने अपने-अपने क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य कर इस संगोष्ठी को परमोत्कृष्ट बनाया. मुझे भी यहाँ आमंत्रित किया गया एवं एक सत्र के अध्यक्षमंडल में रखा गया. आभारी हूँ. श्रीमती जय वर्मा का सान्निध्य सदैव की भाँति आत्मीयतापूर्ण सुखद रहा. डॉ. वर्मा की स्नेहिल प्रशंसा सदैव उत्साहवर्धक होती है. आभार. जहाँ इस सम्मेलन में कुछ पुराने साथी मिले वहीं कुछ नए भी बने. दोनों ही हाथों में आनंददायी लड्डू. शिक्षाप्रद, आत्मीयतापूर्ण, मधुर वातावरण जिसे छोड़ते समय प्रतिभागियों के नयन सजल होना स्वाभाविक था.

श्री ब्रजेन्द्र त्रिपाठी की सौजन्यता से साहित्य अकादमी दिल्ली के त्रिदिवसीय कार्यक्रम में उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ.

कैनेडा से गये श्री एवं श्रीमती गौड़ के ज्येष्ठ सुपुत्र कुणाल का कृतिका से विवाह-गठबन्धन व विवाह संबंधी सभी कार्यक्रम भव्य रूप से सम्पन्न हो अतुलनीय भारतीय संस्कृति की झलक दिखाते हुए महोत्सव के रूप में परिणित हुए. श्री गौड़ ने इस अवसर पर ठाकुर साहब को बड़े भाई के रूप में अपने परिवार में सम्मिलित कर हमें गौरवान्वित किया; हम गौड़ परिवार की सदाशयता के आभारी हैं. यहाँ से गये सुधा, बिन्दु एवं उनके परिवारों ने वर-पक्ष की स्नेहिलता व आत्मीयता को उद्भासित किया.

श्री अनिल जोशी एवं आई.सी.सी.आर. के श्री अजय गुप्ता के सौजन्य से उपमहानिदेशक श्री अनवर हलीम व श्रीमती ममता कालिया की अध्यक्षता में सम्पन्न हुए श्री हरजेंद्र चौधरी की पुस्तक 'जाने क्या होगा' के विमोचन समारोह में सादर आमंत्रित हो ठाकुर साहब व मैं गौरवान्वित हुए.

डॉ. हेमा उनियाल की 'केदारखण्ड' (धर्म, संस्कृति, वास्तुशिल्प एवं पर्यटन) पुस्तक का विमोचन डॉ. कर्ण सिंह ने किया तथा अध्यक्ष श्री कुलानन्द भारतीय तथा मुख्य व विशिष्ट अतिथि थे पद्मश्री डॉ.श्याम सिंह शशि एवं प्रो. पुष्पेश पंत. समारोह अत्यंत सफल रहा. डॉ. शशि के सौजन्य से मुझे इस अवसर पर सहभागिता प्राप्त हुई, आभारी हूँ. माननीय डॉ. कर्ण सिंह ने यहाँ मेरी पुस्तक 'उपनिषद-दर्शन' व 'वसुधा' पत्रिका की सराहना की, आभार.

'अमर उजाला' के संपादक डॉ. अशोक मिश्र एवं 'नुक्कड़' के डॉ. अविनाश वाचस्पति का अनायास घर पर आना, साहित्यिक एवं वैयक्तिक आनंदानुभूति से भर गया.

'भारतीय धरोहर' के प्रधान संपादक श्री विजय शंकर तिवारी से बहुत विचार-विनिमय हुआ. 'भोजन से भेषज' के अन्तर्गत वे एक बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं. भारतीय भोजन प्रणाली द्वारा जन-जन के अनेकानेक स्वास्थ्य सम्बन्धी मुद्दों पर विचार-विमर्श हुआ.

'आधार-शिला के संपादक श्री दिवाकर भट्ट घर पर आए; साहित्यिक व कला सम्बन्धी विषयों पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ.

सुश्री अर्चना डैनियल मेरे साहित्य पर पीएच.डी शोध कर रही हैं तथा डॉ. कृष्ण कुमार अग्रवाल डी.लिट. करने की योजना बना रहे हैं; अत: उनसे इस दिशा में वार्तालाप हुआ.

पद्मश्री विभूषित डॉ. श्याम सिंह शशि की अध्यक्षता में इन्दिरा गांधी मुक्त विश्वविद्यालय के समारोह में ठाकुर साहब व मुझे रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल की ओर से पुष्प-गुच्छ व शॉल से सम्मानित किया गया, साथ ही मुझे रिसर्च फाउंडेशन की ओर से 'फ़ेलोशिप' प्रदान की गई, तथा 'साहित्य भारती दिल्ली' की ओर से मुझे 'साहित्य भारती सम्मान' प्रदान किया गया. आभारी हूँ. डॉ. अनिल सिंह व्याख्याता तथा सह-समन्यवक, डॉ. ममता सिंह व्याख्याता तथा रजिस्ट्रार, डॉ. ऋचा सिंह संपादक 'सभ्यता संस्कृति' के संयोजन में तथा डॉ. पूर्ण पाल के संचालन में समारोह बड़े ही सराहनीय ढंग से सम्पन्न हुआ. मेरे साथ मंचासीन थे डॉ. श्याम सिंह शशि, श्री सत्य पाल ठाकुर, डॉ. एस.के. मिश्र, एवं डॉ. संतोष खन्ना. सभी शिक्षक वर्ग, छात्र, छात्राओं ने बढ़-चढ़कर इस आयोजन में भाग लेकर इसे अत्यन्त सफल एवं चिरस्मरणीय बनाया.

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के डॉ. महासिंह ने दिल्ली मिलने आकर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में प्राप्त हुई पुरानी मधुर स्मृतियों में और नई स्मृतियों को जोड़ कर उन्हें नवजीवन प्रदान किया. उन्हीं के साथ आई थीं----- सुश्री परविन्दर कौर. साहित्य और कला पर हुई वार्तालाप में गुजरे समय का आभास केवल और केवल घड़ी ने ही दिया.

दिल्ली विश्वविद्यालय से संलग्न नेहरू प्लेस डी.ए.वी. कॉलेज के तत्वावधान में डॉ. हरीश जोशी, डॉ. मीना शर्मा, डॉ. आशा रानी के संयोजकत्व में एक रसपूर्ण काव्य-संध्या का आयोजन सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ. इस अवसर पर मुझे विशिष्ट अतिथि का गौरव प्रदान करने हेतु धन्यवाद. प्राचार्य डॉ. रामजी नारायण, डॉ. जगमोहन एवं सभी शिक्षक-वर्ग एवं छात्र-छात्राओं ने ऐसा समाँ बाँधा जो अविस्मरणीय बन गया.

'नया सूरज' के संपादक डॉ. दीपंकर गुप्त जब भी निवास-स्थान पर आए साहित्यिक चर्चाओं में सार्थक समय गुजरा.

'जहँ जहँ चरण पड़े रघुवर के' के लेखक डॉ. राम अवतार जी से विस्तार से राम-कथा पर चर्चा हुई. चूँकि मैं भी राम-कथा पर आधारित शोध-प्रबंध लिख रही हूँ, अत: विचार-विनिमय इस दृष्टि से भी आनंददायी रहा.

प्रवासी संसार के संपादक श्री राकेश पांडे जिस आत्मीयता से मिले वह अकथनीय है.

पण्डिता राकेश रानी व उनके सहयोगियों द्वारा दयानन्द संस्थान का वार्षिकोत्सव एवं महात्मा वेदभिक्षु: जयंती समारोह डॉ. श्यामसिंह शशि जी की अध्यक्षता तथा श्री बनारसी सिंह जी व डॉ. गोविंद बल्लभ जोशी जी के संचालन में कुशलता एवं सफलतापूर्वक मनाया गया. मुझे भी वहाँ बोलने हेतु आमंत्रित किया गया. आभारी हूँ.

डॉ. कर्ण सिंह के जन्मोत्सव पर शरीक होने का अवसर मिला. सुखद अनुभव हुआ. जीवन पर हुई चर्चा कर्मस्थली और वानप्रस्थ तक जा पहुँची. कर्ण सिंह जी का विविध क्षेत्रों और अनेक भाषाओं का ज्ञान स्तुत्यनीय है.

श्रीमती नगेन्द्र ऋषि तथा डॉ. मधु भल्ला के सौजन्य से इंडिया इंटरनेशनल सेंटर औडोटोरियम में 'जैपनीज़ टी सेरेमोनी' देखने का अवसर प्राप्त हुआ. इस प्रथा का जन्म गंभीर विचार-विनिमय हेतु हुआ था पर बाद में यह एक आदत के रूप में परिवर्तित हो गया.

सुश्री राकेश कुमारी शर्मा जी की सदाशयता भूलना आसान नहीं है. हिन्दी की दशा एवं दिशा पर चर्चा हुई. उनके मार्गदर्शन की आभारी हूँ.

डॉ. नरेंद्र कोहली जी की आत्मीयता, डॉ. मधुरिमा कोहली जी की मधुरता में घुल सदैव ही ठाकुर साहब व मुझे आनंदित करती रही है; ईश्वर यह अक्षत रखे.

लखनऊ में डॉ. शंभू नाथ जी व चंदा नाथ जी का बाग-बगीचा ग्रंथों में वर्णित नन्दन वन की अनुभूतियों से भर देता है. जहाँ व्यक्तिगत रूप से इतनी आत्मीयता से उन्होंने हमें अपने घर में सदस्य के रूप में रखा वहीं साहित्य-क्षुधा को भी साहित्यामृत से स्वयं पोषित करने के साथ ही साथ अन्य साहित्यकारों की साहित्य-गंगा में भी डुबकियाँ लगाने के अवसर दिये, उसके लिए धन्यवाद शब्द पर्याप्त नहीं है. वहाँ साहित्य के साथ-साथ जिस तरह अध्यात्म पर चर्चा हुई उसका संबल ले, ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह दोनों परिवारों पर इसी तरह कृपा-दृष्टि बनाये रखे.

लखनऊ में ही डॉ. दाऊजी गुप्त ने एक काव्य संगोष्ठी का आयोजन किया जिसमें कवियों के साथ ही साथ उनके पूरे परिवार ने भी वहाँ उपस्थित हो संगोष्ठी की शोभा बढ़ाई. सम्पूर्ण परिवार की सदाशयता के लिए हम दोनों आभारी हैं. व्यक्तिगत रूप से उन्होंने ठाकुर साहब व मुझे जो प्रेम-परिपूर्ण सम्मान दिया और साथ ही साथ मुझे 'चेतना साहित्य परिषद्' की ओर से प्रशस्ति-पत्र देकर सम्मानित किया, उसके प्रति भी आभार. इस दौरान मिले लखनऊ के सभी साहित्यकारों की रचनाएँ 'वसुधा' के इस अंक व आगामी अंकों को समृद्ध करती रहेंगी.

इस यात्रा के दौरान जन-जन में उत्साह की लहर और राष्ट्र के प्रति अतुलनीय गौरव के हम साक्षी भी रहे जब भारत ने क्रिकेट का विश्व कप जीता.

श्री उपेन्द्र नाथ जी ने अनेक अवसरों पर अपनी साहित्य-लगन से अभिभूत किया है. उन्होंने जितना आदर, प्रेम, ठाकुर साहब और मुझे दिया है उसके लिए केवल धन्यवाद कहना यथोचित न होगा, पर साथ ही दूसरे शब्द भी कम ही पड़ेंगे. अत: ठाकुर साहब व मैं उनकी सुख, समृद्धि के लिये उन्हें आशीर्वाद वचन देना चाहेंगे. उपेन्द्र जी के सौजन्य से ही राजनीति और साहित्य को कर्मक्षेत्र बनाने वाले साधु प्रवृत्ति के डॉ. प्रसन्न पातसानी जी से परिचय हुआ. इस अनोखे सम्मिश्रण की प्रकृति वाले सरल स्वभाव जिन्हें मैं बाबा बुलाती हूँ, से साहित्य पर चर्चा हुई. उनकी कविताओं में प्रकृति वर्णन और उनके रूपक बड़े ही मनोहर हैं.

'वसुधा' के साहित्यकार डॉ. अशोक चक्रधर जी को 'एफ.आई.ई फाउंडेशन का राष्ट्रीय पुरस्कार', डॉ. उषादेवी कोल्हटकर को ब्रिहान महाराष्ट्र मंडल द्वारा 'आर्ट, कल्चर एंड लिटरेचर एवार्ड फॉर दि ईयर २०११', डॉ. कुँवर बेचैन को 'पं॰ हरप्रसाद शास्त्री साहित्य मनीषी सम्मान' तथा नीरज व्यास जी को साहित्य पुरस्कार से अलंकृत किया गया है. ठाकुर साहब, वसुधा व मेरी ओर से बधाई.

आपको यह जान कर प्रसन्नता होगी कि रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल द्वारा हिन्दी में पहला ऐतिहासिक ग्रंथ 'सामाजिक विज्ञान हिन्दी विश्व कोश' पाँच भागों में प्रकाशित हुआ है जिसमें डेढ़ हजार पृष्ठ तथा तीन सौ पचास प्रविष्टियाँ हैं. भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकर दयाल शर्मा विश्वकोश-समिति के संरक्षक रहे हैं. विश्वकोश के प्रधान संपादक (मानद) वरिष्ठ साहित्यकार पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि हैं जो आजकल 'विश्व हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ के मानद प्रधान संपादक हैं और मैं सहयोगी संपादक हूँ. हिन्दी में अपने ढंग का यह पहला कार्य अब तक प्रकाशित हिन्दी साहित्य के सभी इतिहासों से हट कर होगा. इस ग्रंथ में हिन्दी साहित्य के इतिहासों का विवरण, देश-विदेश का हिन्दी साहित्य (प्रवासी, रोमा, यायावर साहित्य), हिन्दी-इतर भाषा-भाषी साहित्य, समीक्षा साहित्य, अनुवाद साहित्य, आदिवासी दलित साहित्य, नारी-विमर्श साहित्य, बाल साहित्य, इंटरनेट हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी सेवी संसार व देश-विदेश की प्रतिष्ठित हिन्दी पत्रिकाओं का परिचय आदि समाहित होगा. आपसे विनम्र निवेदन है कि आप स्वलिखित किन्हीं पाँच चयनित पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, व्यक्तिगत परिचय तथा अपने पासपोर्ट-साइज़ चित्र सहित यह सामग्री भेज कर अनुग्रहित करें. यदि आपके कोई परिचित इस श्रेणी में आते हों तो उन्हें भी यह सूचना देने की कृपा करें. 'विश्व संवाद' संस्था के अन्तर्गत भी साहित्य और कला के क्षेत्र में

संस्कृति के उन्नयन हेतु कार्य हो रहा है जिसमें डॉ. शशि व मेरे साथ ही जर्मनी से सौम्य प्रकृति के विद्वान डॉ. लुगानी जुड़े हुए हैं.

इस बीच आप सबकी शुभ-कामनाओं से मेरी दो पुस्तकों, 'अनोखा साथी' कहानी-संग्रह तथा 'काव्याञ्जलि' काव्य-संग्रह का भी प्रकाशन हुआ.

अपनी जन्मस्थली, पावन-पुनीत चित्रकूट जाने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ. वहाँ कर्नाटक की अम्माँ, जिन्होंने मुझे राम-कथा ग्रंथों पर आधारित शोध-प्रबन्ध लिखने का कार्य-भार सौंपा हुआ है, से इस विषय सम्बंधित काफ़ी चर्चा हुई. उनका मार्गदर्शन एवं आशीर्वाद मेरे लिए अमूल्य है. चित्रकूट के नन्हें राजा, मेरे नन्हें भइया व परिवार ने भी सदा की तरह हम दोनों को पारिवारिक आत्मीयता से तो ओत-प्रोत किया ही साथ ही राम-कथा सम्बंधित अनेक मनीषियों से भी मिलवाया. इस बार गुरु जी, जगत् गुरु स्वामी रामभद्राचार्यजी के वहाँ न होने से उनकी अनुपस्थिति खली. हाँ, कम से कम अदरणीय बुआजी, समधीजी, कुलपति जी, अवनीशजी से आनंददायी मिलन हुआ. नन्हें भइया के सौजन्य से एक बहुत महती आयोजन में विशिष्ट अतिथि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. जगत् गुरु रामभद्राचार्य विकलांग विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं ने शिक्षक-वर्ग की संरक्षता में, वहाँ के कुछ क्षेत्रों में घर-घर जाकर कुरीतियों के प्रति तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए मेडिकल व अन्य स्वास्थ्य-सम्बंधित संस्थाओं के प्रति जन-जाग्रति का महत्वपूर्ण अभियान चलाया जिसमें उन्हें काफ़ी सफलता भी मिली. वहाँ, कम से कम मुझे, एक और सुखद आश्चर्यानुभूति हुई, मुख्य अतिथि जो इस क्षेत्र के सुपरिंटेंडेंट पुलिस हैं, उन्होंने हिन्दी साहित्य में डॉक्टरेट प्राप्त की है.

कैनेडा के लिए वापसी यात्रा से कुछ घण्टे पहले प्रवासी दुनिया की कर्णधार श्रीमती सरोज शर्मा एवं माननीय अनिल जोशी जी, जीवन की व्यस्त आपाधापी और समय की मारामारी के बावजूद भी अपने अमूल्य समय से समय निकाल कर ठाकुर साहब व स्नेह को अपनी स्नेही गंगा में आकण्ठ डुबो प्लावित करने के लिए निवास पर आये. उन अकथनीय क्षणों की स्मृति सदा हमारे साथ रहेगी, कभी धूमिल नहीं होगी.

टोराण्टो ने एक कवि-रत्न खो दिया. कई भाषा के ज्ञाता, व्यवसाय से गणितज्ञ, हृदय से कवि डॉ. ब्रजराज किशोर कश्यप जी अब हमारे बीच नहीं रहे. उनकी कमी सदैव खलेगी. उनकी पत्नी श्रीमती राज कश्यप, जो स्वयं भी कवयित्री हैं व उनके परिवार को, ईश्वर से ठाकुर साहब व मेरी प्रार्थना है कि वह उन्हें इस दुःख को सहन करने की शक्ति दे.

अखिल विश्व हिन्दी समिति यू.एस.ए. एवं यू.के. क्षेत्रीय हिन्दी सम्मेलन तथा कथा यू.के. के लंदन सम्मेलन आमन्त्रण के प्रति आभार के साथ-साथ, हिन्दी के प्रचार, प्रसार, विकास, उन्नयन के लिए समर्पित इनसे जुड़े सभी हिन्दी-प्रेमियों को नमन.

स्वाधीनता संग्राम के सेनानी, जिनके रक्त की एक-एक बूँद के हम आभारी हैं, जिनके कारण ही आज हम स्वतंत्र भारत के भारतीय होने का गौरव प्राप्त कर सके हैं, को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए,

सादर,

सस्नेह,

स्नेह

वंदे मातरम की रचना कब, कैसे और क्यों?

राजेश्वर प्रसाद नारायण सिंह

बंगाल में बंगला के लेखक, कवि और उपन्यासकार तो बहुत से हुए हैं, पर बंकिम बाबू की अपनी एक शैली थी और उन्होंने 'वंदे मातरम्' गीत लिखकर अपने को अमर कर दिया। मुझे याद आते हैं वे दिन जब एक तरफ यह गीत लोगों में स्वतंत्रता-संग्राम के लिए जोश पैदा करता था वहीं दूसरी ओर देश की परतंत्रता पर उन्हें दुखी करता था।

सन १९३८ में हरीपुर (वारदोली ताल्लुका) में कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ था, वैसा कोई और नहीं हुआ। सारा प्रबंध सरदार पटेल का था। लाखों की भीड़ थी पर शांति इतनी कि यदि एक कलम हाथ से गिर जाती तो उसकी आवाज कानों में आ पड़ती, गरज यह कि ऐसा आदेश-पालन किसी कांग्रेस में देखने को नहीं मिला। मैं बिहार के डेलिगेटों के बीच बैठा हुआ था, पर सभी डेलिगेट चुप शांत भाव से गाँधीजी और उनके साथ सुभाष बाबू के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। सहसा गाँधीजी लाठी लिये हुए और सुभाष बाबू गाँधी टोपी पहने हुए आकर मंच पर खड़े हो गये। लोगों ने तालियाँ पीटीं और विद्यापीठ की कुछ लड़कियों ने "वंदे मातरम्" गाना आरंभ किया। देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत लाखों की भीड़ रो पड़ी - ऐसा आकर्षण था उस गीत में।

नौहाटी का भक्तिमय वातावरण : बंकिम बाबू का जन्म कलकत्ते से कुछ मील की दूरी पर स्थित नौहाटी नामक नगर में सन १८३६ में हुआ था। वे एक संपन्न जमींदार परिवार में जन्मे थे। उनका पुश्तैनी मकान किसी राजमहल से कम न था। उनके पिता श्री यादव चंद्र चटर्जी एक बड़े जाने-माने व्यक्ति थे, साहित्यिक एवं राधा-कृष्ण के परम भक्त भी। उन्होंने अपने पुराने घर से प्राय: डेढ़ किलोमीटर दूर जाकर देवल पाड़ा महल्ले में एक विशाल दो मंजिले भवन का निर्माण किया, जिसके मध्य में श्री राधा-कृष्ण का मंदिर बनवाया। जहाँ पूजा-अर्चना तो एक पंडित करता था पर राधाजी की सुंदर अष्टधातु की बनी हुई प्रतिमा की सेवा के लिए एक अलग परिचारिका रखी गयी थी, जो राधाजी की सेवा अर्थात श्रृंगार, पूजा आदि करती। उन्हें प्रतिदिन नयी पीले रंग की साड़ी पहनायी जाती, तभी मंदिर का पट खुलता और सैकड़ों दर्शनार्थी, जो खड़े होकर पट खुलने की प्रतीक्षा करते रहते थे, साष्टांग प्रणाम करते और पुजारी से प्रसाद लेते। मकान के विशाल हाते में रथ-शोभा यात्रा भी सावन के महीने में निकला करती थी (वैसे ही - जैसे श्री जगन्नाथ पुरी में) रथ पर कृष्ण-बलराम के विग्रह होते। इस अवसर पर हाते में एक छोटा-मोटा मेला भी लगता, जिसमें हर चीज की छोटी-छोटी दुकानें होतीं तथा संगीत का आयोजन भी होता।

बंकिम बाबू का एक कमरा मंदिर के पास ही था, जिसमें बैठकर उन्होंने अपने अनेक उपन्यासों के अधिकांश हिस्से लिखे थे। इनके ये उपन्यास बंगला साहित्य की निधि है : १. दुर्गेश नंदिनी २. कपाल-कुंडला ३.मृणालिनी ४.विष-वृक्ष ५. इंदिरा ६. कृष्णकांतेर वील ७. चंद्रशेखर ८. आनंद मठ ९. देवी चौधरानी तथा १०. सीताराम इत्यादि।

इन उपन्यासों में बंकिम बाबू का सबसे पहला उपन्यास 'दुर्गेश नंदिनी' है, जिसमें एक वीर क्षत्राणी की कथा है। ये सारे उपन्यास उन्होंने अपने लिखने के कमरे और अर्जुना झील के तट पर बैठकर लिखे थे। अर्जुना झील करीब छह किलोमीटर में फैली हुई है और चारों ओर तरह-तरह के घने वृक्ष तथा धान के खेत इसके सौंदर्य पर चार चांद लगाते हैं। मैं इसे देखकर चकित रह गया। बंकिम बाबू के 'वंदे मातरम्' में बंगाल का जो रूप चित्रित है, वह हू-ब-हू इस झील में मानो अंकित हो। इसे देखते ही स्मरण हो जाता है -

सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम
शस्य श्यामलाम् मातरम्। वंदे मातरम्

बंकिम बाबू के उपन्यासों में 'आनंद मठ' सबसे विख्यात और सर्वोपरि है। 'आनंद मठ' का नाम और विषय दोनों ही त्रिकोण पर आधारित है। इस कथा का मूल बंगाल का महा दुर्भिक्ष है, जो सर जॉन शोर की रिपोर्ट के मुताबिक सन १७६९-१७७० में हुआ था। वह एक ऐसा वक्त था, जब सोने से ज्यादा मूल्यवान अन्न था। सोना देने पर भी अन्न प्राप्त होनेवाला न था। माँ की गोद में बच्चे दूध के लिए तड़प-तड़पकर मर जाते थे और उनके सामने ही लाश को चील, सियार, कौआ नोच-नोचकर खाते थे। एक तरफ प्रकृति का तांडव-नृत्य, दूसरी तरफ नवाबों का शासन, जहां प्रशासक थे मुर्शिदाबाद के नवाब मीरजाफर। मगर लगान की वसूली शाह आलम से दीवानी प्राप्त कर कंपनी ने अपने हाथों में ली थी। दोनों शासकों के बीच रिआया की स्थिति काफी दयनीय हो गयी। कोई सहायता तो थी नहीं, यदि कुछ था तो सिर्फ शासन का जुल्म। इस जुल्म के विरोध में प्रतिशोध की भावना से उठोरित अपने मठाधीशों के आदेश से संन्यासियों ने विद्रोह किया।

पलासी की लड़ाई के बाद कंपनी बंगाल और उड़ीसा की दीवानी (बादशाह शाह आलम से उसने दीवानी हासिल की थी) हासिल कर अपनी सत्ता स्थापित करने में लगी हुई थी। परिणाम यह हुआ कि अर्थ की व्यवस्था तो कंपनी के हाथों में थी और शासन नवाब के हाथों में।

बिहारी का एक दोहा है --

"दुसह दुराज प्रजानिको, क्यों न बढ़े दु:ख द्वंद अधिक अंधेरों जग करत, मिली मावस रविचंद।।" अर्थात, जब दुअमली होती है -- प्रजा पर दुहरे शासकों का शासन होता है -- तो प्रजा के दु:ख बेतरह बढ़ जाते हैं, जैसे अमावस की रात सूर्य और चंद्र के एक साथ मिल जाने से सर्वाधिक गहरी काली हो जाती है।

यही हाल बंगाल का हो रहा था। एक ओर कंपनी की सरकार वित्त के मामलों में अपना अधिकार मजबूत करने में लगी हुई थी, जिसके लिए उसने दीवानी हासिल की थी। दूसरी ओर नवाबों के शासन से देश की जनता कुचल रही थी। यही कारण था संन्यासियों को हिंदुओं के रक्षार्थ विद्रोह करना पड़ा। उनका दल गाँव-गाँव जा-जाकर हिंदुओं को प्रोत्साहित करने के लिए यह गीत गाता हुआ विचरा करता था --

वंदे मातरम्, वंदे मातरम्
सुजलाम् सुफलाम् मलयज शीतलाम्।
शस्य श्यामलाम् मातरम्।। वंदे मातरम्।।
शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्।।
सुहासिनी सुमधुर भाषिणी।
सुखदां वरदां मातरम्।।
वंदे मातरम्।
त्रिशंत्कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले,
द्विंत्रिशत्कोटि भुजेधृति स्वर कर वाले।
के बेले मा तुमी अबले,
बहुबल धारणीम् नमामि तारणीम्।
रिपुदल वारणीम् मातरम्।। वंदे मातरम्।।

'आनंदमठ' की लोकप्रियता : इस तरह से बंकिम बाबू ने त्रिकोणात्मक कथा को 'आनंद मठ' में बड़ी कुशलता से उस समय की स्थिति का सजीव चित्रण करते हुए दिखलाया है। कहना न होगा कि यह पुस्तक बंगाल में अतिशय लोकप्रिय हुई और घर-घर में 'वंदे मातरम्' गीत गाया जाने लगा। हिंदुओं के लिए इस गीत ने संजीवनी-बूटी-सा काम किया। प्रस्तुत है इस लोकप्रियता का एक प्रमाण। सन १९०१ में जब गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर अपनी पुत्री माधवीलता के विवाह के संबंध में मेरे शहर मुजफ्फरपुर में पधारे तो यहां के

बंगाली समाज ने उन्हें प्रथम मान-पत्र (नोबेल पुरस्कार प्राप्ति के कई साल पहले) प्रदान किया था। सभा में खासी भीड़ हुई और लोगों ने बड़े चाव से गुरूदेव के भाषण को सुना और अंत में उनसे अनुरोध किया कि वे अपने मुख से एक गीत गाकर सुनाएं। इस अनुरोध पर उन्होंने जो गीत गाया, वह 'वंदे मातरम्' ही था।

अंगरेजी का प्रसार-प्रचार : पलासी की लड़ाई के बाद बंगाल में अंगरेजों की सत्ता धीरे-धीरे मजबूत होने लगी उन्हीं दिनों राजा राम मोहन राय के अथक प्रयास से ब्रिटिश पार्लियामेंट ने ईस्ट इंडिया कंपनी को यह आदेश दिया कि वह भारतवर्ष में अंगरेजी शिक्षा का आरंभ करे और इस आदेशानुसार लार्ड बेंटिक ने कई संस्थाएं खुलवायीं। इनमें सबसे प्रथम था कलकत्ता का प्रेसिडेंसी कॉलेज जो सन १८२० में स्थापित हुआ। अंगरेजी शिक्षा के तहत प्रेसिडेंसी कॉलेज भारत का ही नहीं बल्कि एशिया का सबसे पहला कॉलेज था। प्रेसिडेंसी कॉलेज की स्थापना के बाद कलकत्ता विश्वविद्यालय की सृष्टि हुई, जिसका विस्तार बंगाल से लेकर पंजाब तक था और इस देश के दक्षिण हिस्से को छोड़कर बाकी सभी हिस्सों में जो कॉलेज स्थापित हुए, उन सबकी परीक्षाएँ कलकत्ता विश्वविद्यालय ही लिया करता था।

किसे कलाम न होगा यहाँ यह कहना कि नौहाटी नगर गंगा के किनारे पड़ता है। गंगा के उस पार चेनसुरा नगर है। किसी समय यह फ्रांस के अधिकार में था। क्लाइव और फ्रांसिसी जनरल डुप्ले के बीच लड़ाई चली थी और अंत में दोनों के बीच इस शर्त पर सुलह हुई कि बंगाल में चंदरनगर और चेनसुरा तथा मद्रास में पांडिचेरी फ्रांस के अधिकारगत होंगे। तदनुसार ये फ्रांस के अधिकार में आये और यहां फ्रेंच की पढ़ाई शुरू हुई।

चेनसुरा में : चेनसुरा में बंकिम बाबू के पिता के मित्र बंगाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार भूदेव मुखोपाध्याय रहा करते थे। इन दोनों के बीच बड़ी मैत्री थी। आना-जाना बना रहता था। इसको आसान करने के लिए बंकिम बाबू के पिता ने गंगा और अर्जुना झील के बीच (दूरी बहुत कम थी)। एक नहर बनवायी और एक नौका अर्जुना में रखी, जिस पर चढ़कर वे चेनसुरा जाते और अर्जुना में यदाकदा सैर किया करते थे। गंगा से लगे रहने के कारण अर्जुना झील का पानी कम नहीं होता। यह नहर शायद अब भी वर्तमान है। बंकिम बाबू के बाद कोई पुत्र नहीं था और उनकी माली हालत भी खराब हो चली तो उनके पिता का बनवाया हुआ विशाल महल धीरे-धीरे खंडहर हो चला। उनके तीन नाती थे, उनके पास उतना पैसा नहीं कि मरम्मत करा सकें। परिणाम यह हुआ कि बंकिम बाबू के देहावसान के बाद ये महल खंडहर का रूप धारण करने लगे। उनके नाती कलकत्ता चले गये।

खंडहर निवास - अब संग्रहालय : बंगाल सरकार ने मकान के कुछ हिस्से जो अभी भी अच्छी अवस्था में हैं तथा बंकिम बाबू के लिखने-पढ़ने का कमरा तथा शिव और राधा वल्लभ के मंदिर अपने हाथ में कर लिये हैं और इसे एक संग्रहालय का रूप दे डाला है। दर्शक इन्हें जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट से परमिट लेकर ही देखने जा सकते हैं। वर्तमान समय में नौहाटी और शहरों की तरह एक उन्नत शहर बन गया है और वहां का 'टेनिस बॉल साईज' का मशहूर रसगुल्ला आज भी बनता है। यहां का प्रसिद्ध महल्ला भांटपाड़ा आज भी संस्कृत विद्या का केंद्र बना हुआ है। भांटपाड़ा, जो शहर से प्राय: आधा किलोमीटर की दूरी पर है, के ब्राह्मणों के परिवार आज भी परंपरागत जीवन-शैली अपनाये हुए हैं। पर बंकिम बाबू के कारण जो गरिमा उसे प्राप्त थी, वह अब कहानी बनकर रह गयी है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा था --

कहेंगे सबेई नैंन भरि-भरि पाछे
प्यारे हरिश्चंद्र की कहानी रहि जायेगी

विषयांतर न होगा यहाँ यह बताना कि बंकिम बाबू (बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय) के परिवार की एक कन्या का विवाह हमारे नगर मुजफ्फरपुर में हुआ था। वह अब भी जीवित हैं और यहीं ससुराल में रहती हैं। इस लेख में बंकिम बाबू के संबंध की अधिकांश बातें उन्हीं से सुनी हुई हैं, अत: प्रामाणिक हैं।

काव्य की सर्जना

कृष्णमुरारी 'विकल'

सृजित शब्द-छवि लेखनी-तूलिका से
कला काव्य-भा की किया अर्चना।।
वन्दना में जिसे नित्य-प्रति था बुलाया।
नमन् के लिये सर्वदा सिर झुकाया।
सतत् साधना में रहा रत निरन्तर
लिखे गीत अगणित जिन्हें गुनगुनाया।।
द्वार मन का खुला मैल सारा धुला,
फिर निखरती गयी सिद्धिदा साधना।
लेखनी से बरसती रही भावना।
पूर्ण होती रही कल्पना-कामना।
शब्द बरबस अधर से फिसलते रहे
गीत-गंगा बही तृप्ति-आस्वादना।
बात ही बात में छंद पूरा हुआ
यों अनायास ही काव्य की सर्जना।।
प्रीति के गीत हमको न अच्छे लगे।
संकटों से हमारे हैं रिश्ते सगे।
आज संत्रास-कुण्ठा-घुटन पल रही
प्रेम के भाव अब तक न सोकर जगे।
काव्य की देख लय भाग जायेगा भय
जीत हो गीत की भ्रांति की वर्जना।।

निज भाषा में ही देश की अस्मिता की पहचान

सिद्धेश्वर

निज भाषा के विकास से ही देश और समाज सशक्त होता है। हिन्दी हमारी अपनी भाषा है जिसके संबंध में स्वतंत्र भारत के संविधान में १४ सितंबर, १९४९ को यह प्रावधान किया गया कि यह राजभाषा है, मगर पंद्रह वर्षों तक सारा कामकाज अंग्रेजी में भी साथ-साथ चलता रहेगा। इसी के साथ यह भी सुझाव दिया गया कि पंद्रह वर्षों की अवधि में हिन्दी को विकसित कर लिया जाएगा। तब से प्रत्येक वर्ष संवैधानिक प्रावधान के मुताबिक केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा हिन्दी दिवस, हिन्दी सप्ताह, हिन्दी पखवाड़ा तथा हिन्दी माह मनाया जा रहा है, बावजूद इसके वही ढाक के तीन पात। छः दशक बीत जाने के बाद भी हिन्दी भाषा उपेक्षित है और हमारी चेतना में अभी तक हिन्दी प्रतिबिम्बित नहीं हो पाई है।

दरअसल केन्द्र हो या राज्य सरकार - हिन्दी के उन्नयन को लेकर कोई सार्थक प्रयास हो ही नहीं रहा है। हिन्दी को केवल कागज़ी खानापूर्ति तक सीमित कर दिया गया है। आभिजात्य वर्ग में अभी भी अंग्रेजी का ही बोलबाला है। आखिर ये सब मानसिक भाषाई विकार नहीं तो और क्या है? आज भी सरकारी भाषा के तौर पर हिन्दी में न होकर आंग्ल भाषा में ही पत्र-व्यवहार का चलन है।

हमें आज इस पर गंभीरता से विचार करना होगा कि आज तक हिन्दी विकसित क्यों नहीं हो पाई? आख़िर वे कौन-से कारण हैं जिसके चलते भारत की संपर्क भाषा हिन्दी को पीछे धकेलने का षड्यंत्र आज तक रचा जा रहा है? जबकि सच तो यह है कि अब तो हिन्दी कंप्यूटर और इंटरनेट वगैरह की यांत्रिक विशेषताएँ भी ग्रहण कर चुकी है। मैं यह नहीं कहता कि अंग्रेजी को छोड़ दिया जाए। ज्ञान जहाँ से लेना हो, लेना चाहिए, पहचान तो अपनी भी बनानी ही चाहिए और यह पहचान एवं गरिमा अपनी भाषा यानि हिन्दी में ही मिल सकती है। इस दृष्टि से इसे जनमानस के हृदय की भाषा का दर्जा मिलना चाहिए जिसके लिए कोई ठोस योजना भी बनाई ही जानी चाहिए।

हिन्दी कि भाषिक संस्कृति को देखने पर हमें इसमें प्रायः सभी भारतीय भाषाओं का संस्कार मिलता है, मगर हिन्दी को किसी ख़ास प्रदेश की भाषा कह कर राजनीतिक लाभ लेने वाले राजनीतिज्ञों और व्यवस्था को अपनी मुट्ठी में रखने वाले संभ्रांतों की गहरी चाल को आम जनता न तब समझ पाई थी और ना ही आज समझने के लिए तैयार है।

दरअसल, धार्मिक आंदोलन से लेकर स्वाधीनता-संग्राम तक में जिस हिन्दी ने अपनी क्षेत्रीयता का कभी परिचय नहीं दिया, उसी हिन्दी को कुछ लोगों ने राजनीतिक शतरंज के भारत पर एक प्रदेश दे दिया - हिन्दी प्रदेश। आज भी इस बात का प्रयोग धड़ल्ले से किया जाता है। यदि हिन्दी का अर्थ भाषा के रूप में लें, तो यह स्पष्ट है कि वह भाषा जिसे हिंदुस्तान के लोग बोलते हैं। क्या हिन्दुस्तान केवल उत्तर भारत को कहा जाता है? कतई नहीं। उत्तर से दक्षिण तथा पूरब से पश्चिम तक फैले राज्यों एवं संघ-राज्यक्षेत्रों को हिन्दुस्तान कहा जाता है।

एक अरब से अधिक आबादी वाले देश भारत के दस राज्यों के पचास करोड़ से ज़्यादा लोग हिन्दी बोलते हैं। यही नहीं हिन्दी आज दुनिया की शायद सबसे बड़ी भाषा है। लगभग ३७ देशों में हिन्दी समझने वालों की संख्या डेढ़ अरब से ज़्यादा है। हिन्दी की चिंगारी देश के कोने-कोने से उठ रही है। आख़िर तभी तो हिंदुस्तान के प्रायः सभी क्षेत्रों से प्रकाशित हिन्दी की हज़ारों पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी की ज्योति निरंतर

जलाये जा रही हैं। वैसे हिन्दी दिवस सरकारी कार्यालयों में 'खंड पाखंड पर्व' भले हो, मगर सरकार की शिथिलता और उदासीनता हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनने से रोक नहीं सकती। हिन्दी भारतीय जनता की आत्मा है और इस आत्मा की चीख़ मुक्तिबोध की कविता 'अंधेरे में' की इन पंक्तियों में कभी न कभी अवश्य सुनाई पड़ेगी -

'अब तक क्या किया
जीवन क्या जिया
ज़्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम
मर गया देश और जीवित रह गए हम।'

सच तो यह है कि अब तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित नहीं करने का कहीं गहरा अपराध-बोध और पश्चाताप सरकार को भी है। यदि सरकार ने अपने इस संवैधानिक संकल्प और विश्वास की रक्षा नहीं की है तो यह दुर्भाग्यपूर्ण है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्ज़ा हर हाल में मिलना ही चाहिए। संयुक्त राष्ट्र संघ में देर-सबेर हिन्दी को जगह जरूर मिलेगी, मगर उसके पूर्व अपने ही देश में इसे समृद्ध करने की नितांत आवश्यकता है। हिन्दी की तुलना में अपने देश में अंग्रेजी को खड़ा करने की बाध्यता का तुक समझ से परे है।

वस्तुत: आज़ादी के बाद हम निज भाषा के लिए जर्मनी, जापान, फ्रांस, स्पेन तथा इटली जैसे देशों का अनुसरण नहीं कर सके जहाँ अंग्रेजी के झंडे उतरते ही सबसे पहले वहाँ, अंग्रेजी के अनावश्यक कूड़े-करकट से अपने-अपने पुस्तकालय साफ़ किए गए। इससे भी बढ़कर आश्चर्य तो हमें तब होता है जब सुनते हैं कि इंग्लैंड के आयरलैंड तक में अंग्रेजी का विरोध हो रहा है। चांसर बर्न, स्पेंसर, टेनिसन और स्कॉट ख़ुद इंग्लैंड के पुस्तकालयों से गायब हैं। और एक हमारा देश भारत है जहाँ की राजभाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी अपमान और अट्टहास के बीच सहम रही है, माथे की बिंदी बनने की तो बात ही छोड़िए। ऐसे में दुष्यंत कुमार की इन पंक्तियों को गाते हुए कुछ रुदन करने का मन करता है -

'ख़ास सड़कें बंद हैं, कब से मरम्मत के लिए,
ये हमारे अभियान की सबसे बड़ी पहचान है।'

इन सब विषम परिस्थितियों के बावजूद हम इस बात से आशान्वित हैं कि आज जब संसार की सात हजार भाषाओं के सामने आने वाले पाँच सालों में पूरी तरह मिट जाने का ख़तरा मँडरा रहा है और हर सप्ताह संसार की एक भाषा हमेशा के लिए विलुप्त हो रही है, इस देश के सत्तर करोड़ बोलने-समझने वाले लोगों की हिन्दी भाषा न तो विलुप्त हो रही है और न ही इसके सामने अस्तित्व का आसन्न संकट है। यह हिन्दी किसी सरकार और बाजार की मोहताज़ नहीं है। यह हिन्दी अंग्रेजी से हार नहीं रही है, बल्कि अंग्रेजी के सुविधाजनक शब्द स्वेच्छा से अपनाकर उसे पचाते हुए उसे अपने माफ़िक बना रही है। वह अंग्रेजी का बड़े पैमाने पर हिंदीकरण कर रही है। पिछले दिनों जब 'स्लमडॉग मिलिनेयर' फिल्म के गुलजार द्वारा लिखे गाने 'जय हो' को ऑस्कर पुरस्कार से नवाज़ा गया, तो हमारे पुराने शासक ब्रिटेन को अपना शब्द-कोश बदलना पड़ा और उसमें 'जय हो' को सम्मिलित करना पड़ा।

दरअसल, हिंदी को असली ख़तरा उनसे है जो इसे बदलने से रोक रहे हैं, जो सिर्फ़ और सिर्फ़ सरकार, संचार और बाजार पर टिके हैं। जरूरत केवल इस बात की है कि इसमें सुधार लाया जाए। हमने एक वर्ष में हिन्दी के विकास के लिए क्या किया, इसका मूल्यांकन तो एक दिन, एक सप्ताह, एक पखवाड़ा या एक माह में हो ही नहीं सकता। हमने एक वर्ष में कितनी सफलता पाई - इसका आकलन कर

कमियों-खामियों को दूर करना होगा, तभी हिन्दी असली राष्ट्रभाषा के रूप में अपना स्थान बना पाएगी। हिन्दी अब वेबसाइट पर भी आ गई है। संचार-माध्यम के रूप में हिन्दी का अभूतपूर्व विकास हुआ है। साक्षरता बढ़ने के साथ-साथ हिन्दी समाचार-पत्रों की संख्या और उनके पाठकों की संख्या में भी सुखद और आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। अब देश के किसी भी भाग में हिन्दी का पहले जैसा विरोध नहीं है। यहाँ तक कि तमिलनाडु के मुख्यमंत्री करुणानिधि भी न केवल अपनी तमिल पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद करा रहे हैं, बल्कि चेन्नै में बसे हिंदीभाषियों के पास वोट माँगते हुए कहते सुने गए हैं कि वह हिन्दी विरोधी नहीं हैं। संसद में जो लोग अंग्रेजी की वकालत करते हैं वे जरा अंग्रेजी में बोलकर वोट तो माँगें। उन्हें पता चल जाएगा कि आमजन अंग्रेजी नहीं निज भाषा को चाहते हैं। वैसे भी हिन्दी भाषा देश को भी जोड़ने का माध्यम है और भारतीयों को न केवल हिन्दी बल्कि दक्षिण तथा पश्चिम भारतीय भाषाओं को भी सीखने के लिए आगे आना होगा। हिन्दी भाषियों द्वारा दूसरी भाषा सीखने से एक-दूसरे के प्रति प्रेम बढ़ता है और इससे न सिर्फ़ राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को बल मिलता है, बल्कि देश की अस्मिता की पहचान बनती है। हम सब इस बात से अवगत हैं कि भारतीय समाज का निर्माण दक्षिण और उत्तर में बनने वाले दो जन-समुदायों के पारस्परिक समागम से हुआ है और इनमें आनुवांशिक इकाइयाँ एक-दूसरे से इतनी घुल-मिल गई हैं कि अब इन्हें अलग बताना संभव नहीं है। यह प्रमाण उत्तर और दक्षिण के बीच विभाजन करने वाले राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रयासों को ख़ारिज करते हैं और हिन्दी भाषा वृहत्तर भारतीय समाज के भीतर एकता के सूत्र कायम करती है।

शब्द

डॉ. सन्तोष खन्ना

जब मैं शब्दों के बीच होती हूँ
अकेली नहीं होती
साथ चलता है समय
आकाश के संग धरती
इंद्रधनुषी हो जाती है
सीपी में मोती-सी
शब्द के अर्थ और छवियाँ
उद्भासित होती हैं।
शब्द रिश्ते-नाते, दोस्ती, संबंध
सब निभाते हैं
शब्द अपनी संवेदना-सरोकारों में
करुणा बरसाते हैं

शब्द अपने अनेकानेक अवतारों में
उजाला भर जाते हैं।
शब्द जब बन जाते हैं प्रेरणा
मैं एकाएक उठकर
चलने लगती हूँ
नहीं देखती तब
रास्ते में पड़े पत्थर
झाड़-झंखाड़, नुकीले काँटे
पर्वतों के शिखर कितने भी हों दुर्गम
नहीं रुकते क़दम
मैं सब लाँघ जाती हूँ।
कामना यही है
बना रहे शब्द का साथ
हर साँस के साथ
जैसे सागर में उर्मि
जैसे बादल में जल
जैसे सुमन में सुरभि
जैसे कान्हा की मुरली
शब्द ही ब्रह्म है
गंगा-यमुना-सरस्वती की तरह
संवेदना-कल्पना-सृजन का संगम
शब्द की सत्ता को नमन
शब्द की सत्ता को नमन।।

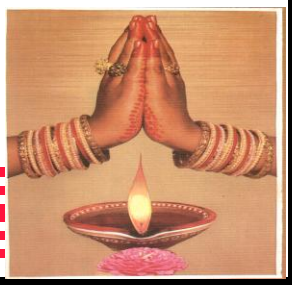

सड़क की लय

डॉ सुषम बेदी

नेहा ने सुना पापा कहे जा रहे थे – "सड़क की भी एक लय होती है। इसे सुनो, पहचानो और उसी हिसाब से गाड़ी चलाओ। जब तुम मैनहैट्टन में चलाती हो तो यहाँ सैंकड़ों गाड़ियाँ एक साथ चलती हैं। बार बार लाल बत्ती होने से रुकना पड़ता है, इसीलिए गाड़ी की स्पीड खूब धीमी रखनी चाहिये ताकि घचके से ब्रेक लगाने की जरुरत ना पड़े।"

परसों नेहा का ड्राइविंग का इम्तहान है। यूं तो नेहा ड्राइविंग स्कूल में कार चलाना सीखती रही है पर एक बार टेस्ट में फेल होने के बाद वह काफी नर्वस है, और पापा ने कहा कि वह इसका कुछ अभ्यास करवा देंगे। पापा की तो ड्राइविंग बढ़िया होती ही है। कितने बरसों से तो चला रहे हैं वे गाड़ी।

छोटी थी तो जिद करती थी गाड़ी चलाने की! पर तब पापा कहा करते थे, बड़ी हो जाओ तब सिखाएंगे तुमको गाड़ी। पर कालेज जाने पर उसे वक्त ही नहीं मिला। अब तो नौकरी भी शुरु हो गयी और उसे होश आया है गाड़ी सीखने का।

तेईस बरस की उम्र में गाड़ी चलाना सीख रही है। सबर्ब में रहने वाले लड़के लड़कियाँ तो सोलह साल के होते ही चलाने लगते हैं। पर नेहा तो मैनहैट्टन में रहती है। यहाँ गाड़ी की वैसी जरुरत पड़ती ही नहीं वर्ना वह भी पहले सीख जाती। भैया भी तो लेट सीखा था, नौकरी लगने पर ही। ममा तो आजतक नहीं सीखीं। तो इतनी कोई बात नहीं देर से सीखने में।

पर नेहा अब तैयार है हर चीज के लिये। यूं नेहा हर काम सीखने के लिये वक्त से पहले तैयार रहती है। उसके स्कूल की टीचर भी यही कहा करती थी। यही बात है कि उसे हर काम आसान लगा करता था। क्लास में वह हमेशा आगे ही रही। पर उसके इसी गुण को लेकर ममी की सहेली ने नेहा को प्रिकाशस बच्ची कहा था यानी कि वक्त से पहले ही "प्रिपेयर्ड" । वह गुण की तरह नहीं बल्कि एक दोष की तरह ही सुनाया गया था यूं बात भी कुछ अजीब सी हो गयी थी। तब वह ग्यारह बरस की रही होगी। क्लास में जैनी ने सब लड़कियों से पूछा था तुम में से कौन कौन वर्जिन है।

नेहा को वर्जिन का मतलब ही नहीं पता था। पर उसने देखा कि जिस लड़की ने भी कहा कि वह वर्जिन है उसका जैनी और उसकी सहेलियों ने खूब मज़ाक उड़ाया था। ना ही नेहा की हिम्मत पड़ती थी अपनी सहपाठियों पर अनजानापन जाहिर करने की। पर घर आकर उसने पहला काम यही किया कि ममी के अपनी सहेली के साथ बैठे होने पर भी ध्यान न दे टपककर सवाल पूछ लिया, " ममी वर्जिन क्या होता है?"

ममी अभी सवाल के प्रति सतर्क भी नहीं हुयी थीं कि नेहा ने जोड़ दिया, " मैं तो वर्जिन नहीं हूं न ममी?"

इससे पहले कि ममी के अवाक चेहरे पर कोई हरकत होती ममी की सहेली बोल उठी थीं, "माई गॉड, कितनी प्रिकाशस बच्ची है। मुंह से दूध निकला नहीं कि वर्जिनिटी के सवाल उठने लगे। भई अभी तो तुम्हारे पढ़ने खेलने की उम्र है। यह सब जानकर करना भी क्या है?

ममी ने मानो होश में आते हुए कहा था, "नेहा तुम तो इतनी अच्छी इतनी अकलमंद बच्ची हो तुम्हें इन सब बातों में नहीं पड़ना चाहिये। ऐसी अमरीकी लड़कियों की संगत में पड़ो ही ना। बस अपना फोकस पढ़ाई पर ही रखो।

अपनी नजर में आज भी नेहा उतनी ही भोली या समझदार थी जितनी कि सवाल पूछने से पहले लेकिन उसे लगा कि सवाल मात्र पूछने से ही वह ममी पापा की नजर में कुछ और हो गयी थी।तब से नेहा को लगा कि ममी पापा को वह सबसे प्यारी तभी लगती है जबकि वह भोली नन्हीं बच्ची बनी रहती

है। जिसे कुछ नहीं मालूम दुनिया दीन का। पापा बेहद खुश होते जब वह तोतली ज़बान में हिन्दी में बतियाती।

पर जहाँ स्कूल के काम का सवाल था वे उससे पूरी बल्कि सामान्य से ज्यादा परिपक्वता की उम्मीद करते। उसे याद है कि एक बार उसके इम्तहान में नम्बर कम आए थे तो उन्होंने कहा था, "डोंट एंड अप बिइंग मेच्योर यू मस्ट एक्सेल इन योर स्टडीज।"

अब इतने बरसों बाद भी परिपक्वता या अपरिपक्वता की वह द्विविधा शायद सुलझी नहीं दिखती। किन चीजों में बढ़िया हो जाना चाहिये और किन में नहीं इसका माप तोल चलता ही रहता है।

एक बार गाड़ी चलाना सीखते सीखते वे लोग मैनहैट्टेन को दाएं बाएं से घेरने वाली हाईवे पर आ गए थे। पर नेहा अभी भी धीमी गति से ही चला रही थी। पापा बोले जब तुम हाईवे पर चलती हो तो स्पीड तेज़ रखनी होती है। सड़क भी खूब चौड़ी होती है और लाल बत्तियाँ भी नहीं होतीं। साथ ही दूसरी कारें भी इतनी तेज़ी से चल रही होती हैं कि अगर तुम धीमा चलाओगी तो सारे यातायात में व्यतिक्रम और गतिरोध पैदा हो जाएगा। इसी से कह रहा हूं कि सड़क की लय को सबसे पहले समझना चाहिये। तभी तुम अच्छी और सेफ ड्राइवर बन सकती हो।

नेहा अब बहुत सी उन चीजों के लिये भी तैयार है जिसे पापा जानते समझते हुए भी चर्चा से बचते आए हैं। नेहा को महसूस होता है कि ममी पापा इस बारे में ही स्पष्ट नहीं है कि उनकी बेटी को लड़का अपनी मर्जी से अपने आप खोजना चाहिये या कि वे इसके लिये 'इंतजाम करेंगे।' ममी की बड़ी बहन की बेटी की शादी जोधपुर रहने वाले एक लड़के से तय हुई थी। यहां आने के बाद उसका अजीब सा ही सलूक रहा और अंततः उसका शादी का हश्र तलाक में हुआ था। तभी से ममी नेहा की किसी हिन्दुतान के लड़के से शादी तय करने को खिलाफ थीं। पर अब नेहा के बड़ी हो जाने के बाद कभी तो वह कह देतीं कि फलां आंटी तुमको एक लड़के से मिलवाना चाहती हैं। यह भी साथ ही जोड़ देतीं कि तुम मिलना चाहती हो तो मिलो वर्ना ऐसी कोई जबरदस्ती नहीं। ममी कहतीं – "आई डोंट वाँट यू तू ह्युमिलियेटड।"

कभी वह कह डालतीं – "यों ठीक है पढ़ती रहो और नौकरी भी करो पर देखा जाये तो बाइस तेईस साल में शादी तो हो ही जानी चाहिये लड़कियों की। मैं तो इक्कीस भी पूरे नही कर पाई थी जब शादी हुई।

नेहा को लगा कि ममी के रवैये में बदलाव इस पर भी मुनस्सर करता था कि उन दिनों वे किस से मिल रहीं थी। अपनी अमरीकी सहेलियों से, कुछ पुराने खयालों की हिन्दुस्तानी सहेलियों से, या किसी रिश्तेदार से। ममी उनके सवालों और टिप्पणियों से बहुत जल्दी बहक जाती।

इसलिये शायद ममी नेहा से कभी यह भी कह देतीं – "देख हमारा तो जमाना और था यहाँ कोई शादी की जल्दी नहीं मचाता। जब कोई ढंग का टकरा जाए तो कर लो वर्ना अपने काम में लगे रहो। कोई बंदिश तो नहीं। हिन्दुस्तान में तो अब तक सारे रिश्तेदार पीछे पड़ गए होते कि भई लड़की को क्यों अभी तक कुँवारा बैठा रखा है। और साथ ही जोड देतीं – "वैसे तो शादी हो जानी चाहिये लड़कियों की ठीक उम्र में वर्ना न तो अच्छे लड़के ही बचे रहते हैं और लड़कियों का स्वभाव भी इतना पक्का हो जाता है कि मन माफिक लड़का मिलना ही मुश्किल हो जाता है।

नेहा को मालूम था कि ममी का इशारा उसकी सहेली अंशुल की ओर था। अंशुल उन्तीस बरस की हो चली थी। तीन साल पहले एक भारतीय मूल के लड़के के साथ उसका संबंध बढ़ा था और दोनो एक साथ रहने लगे थे। फिर साल भर बाद उस लड़के ने कहा था कि उसका अंशुल से शादी का विचार नहीं। वे चाहें तो यों ही साथ रहते रहें। कभी भविष्य में भी उसका शादी का इरादा होगा इसका भी कोई आश्वासन नहीं था।

अंशुल ने रिश्ता तोड़ लिया था। उसके बाद जो भी रिश्ता बने उसका हश्र कुछ ऐसा ही हो रहा था। एक लैटिन अमरीकी लड़का था जिसके साथ वह शादी नहीं करना चाहती थी। एक काला लड़का

था जिससे शादी करने से उसके माँ बाप ने सख्त विरोध किया था। यों माँ बाप की मर्जी के खिलाफ जाकर चाहे वह शादी कर ही लेती पर वह रिश्ता खुद ही टूट गया।

अब वह अचानक उनतीस बरस की उम्र में सन्यासिन बनने की ठान कर बैठ गयी थी। न तो अब वह वैसे झमक झमक गहने पहनती थी, न ही चेहरे पर गहरा मेकअप करती। सफेद साड़ी पहन घंटो ध्यान में लगी रहती। उसने अपने अपार्टमेंट में ही एक कोने में मूर्तियाँ रख कर मंदिर बना लिया था।

आए दिन दक्षिण एशियाई सांस्कृतिक कार्यक्रमों को संगठित करती और नारीवाद की हिमायत करती। कितनी कड़वाहट भर गयी थी अंशुल में मर्दजात के प्रति। एक उग्रनारीवादी बन कर उसने यही कड़वाहट सारे समाज में फैलाने का बीड़ा उठा लिया था।

नेहा उस कड़वाहट से बचना चाहती है।

ममी को डर लगता कि ठीक उम्र में नेहा किसी से बंधी नहीं तो पता नहीं किस दिशा में मुड़ जाए। अंशुल का जिक्र कर वह कह देती – "यह भी कोई उम्र है सन्यास लेने की। उनत्तीस बरस में तो लड़की सर से पाँव तक गृहस्थी में रमी होती है। तुम्हारी पीढ़ी की तो बातें ही निराली है। कभी तो इतना राग रंग और कभी धूनी रमा लो।

नेहा हंस देती – "ममी ये सब फ़ैड हैं। कल को अंशुल को कोई मन पसंद लड़का मिल गया तो सन्यास वन्यास सब भूल जाएगी। उसे रोज ही जीने का कोई नया मकसद खोजना होता है।"

"वह तो ठीक है पर कुछ टिकाव भी होना चाहिये जिन्दगी में। अब इस उम्र में तो किसी के साथ बंध ही जाना चाहिये न?

नेहा को खुद भी तो नहीं पता कि सही दिशा क्या हैं।

अपने माँ बाप के तरीके की तयशुदा शादी उसकी कल्पना के बाहर है। बाकी किसी से रिश्ता जोड़ने में वह भी घबराती है। जो भी रिश्ता जोड़ता है उसे अंत तक पूरे चरम तक पहुंचाना होता है। तभी कोई गंभीरता से विवाह की बात सोचता है। और इसी चरम तक आज़मा लेने के दौरान पता नहीं कब क्या चटख जाएगा कि पूरा रिश्ता ही चकनाचूर हो जाता है। उसकी सहेलियों के साथ यही कुछ तो हो रहा है। इसी डर से वह किसी लड़के के साथ गहरी आत्मीयता का रिश्ता नहीं जोड़ पाई। मन के रिश्ते से शरीर के रिश्ते को परे रखना नामुमकिन हो जाता है। बल्कि यह भी एक शर्त हो जाती है कि मन को समर्पित कर दिया तो शरीर क्या चीज़ है। उसे उलझने में हिचक क्यों?

इसी उलझन में उसका शरीर अभी तक कुंवारा है। अतृप्त है। पर वह कब तक खुद को संभाल कर रखती रहेगी। ममी हमेशा उसे खुद को बचाए रखने के लिये शादी तक कुंवारापन बनाए रखने का पाठ बचपन से पढ़ाती रही हैं। क्या जब तक सही लड़का नहीं मिलता वह यूं ही रहे? केवल शरीर की तृप्ति के लिये शादी के बंधन में पड़ जाना तो अक्ल की बात नहीं। ऐसा नहीं होने देगी वह?

नेहा समझ नहीं पाती कि ममी सचमुच मे क्या चाहती हैं! कभी तो इतने खुले दिमाग वाली अमरीकी महिलाओं जैसी बन जाती हैं तो कभी एकदम दकियानूसी।

उस दिन उसने सुना ममी की एक हिन्दुस्तानी सहेली कह रही थीं – "आजकल तो जमाना बदल गया है क्या पता कल को लड़की आकर यह कहे कि मैं फलां लड़के के साथ रहना चाहती हूं शादी किये बगैर। हमारे रोकने से कोई सुनेंगे भला? मुझे तो ऐसे ख्याल डराते रहते हैं। अगर कुछ ऐसा हुआ तो सारे समाज में बदनामी हो जाएगी।

शायद उन्हीं की बात का असर होगा कि अगले दिन ममी नेहा से पूछ रही थीं – " तेरे दिमाग में कोई लड़का है तो हमे बता दे। अगर तुम किसी के साथ वाथ रहने की सोच रही हो तो हम तुम्हारी मंगनी किये देते हैं। यूं ही नहीं रहने दूंगी मैं।"

नेहा खूब सोच रही है, आजकल सोचती ही रहती है कैसे सही रास्ते पर उतारे अपनी जिन्दगी। नेहा के पास बहुत कुछ है बताने को! ममी की ऐसी बातें उसे आश्वासन नहीं देतीं और डरा देती हैं।

नेहा अभी किसी से मंगनी नहीं करना चाहती, वह सचमुच सिर्फ साथ रहकर देखना चाहती है। अभी उसका शादी में बँधने का इरादा नहीं। फिर भी किसी के प्रेम और साथ से खुद को वंचित नहीं रखना चाहती। ममी ने भी तो इक्कीस की उम्र में शादी कर ली थी। वह तो तेईस पार कर लगभग चौबीस की हो चुकी है। क्या वह ममी को बता सकती है कि वह लड़का साथ ही पढ़ता हुआ एक अमरीकी है? वह इस तरह से महात्वाकांक्षी नहीं जैसा ममी पापा अपने जवाई की कल्पना करते हैं। वह डॉक्टर, इंजिनियर या वकील कुछ भी नहीं बनना चाहता। वह स्कूल टीचर है और इस देश के बच्चों को स्कूली शिक्षा की अच्छी नींव देने में विश्वास रखता है। उसे बच्चों के साथ काम करना पसंद है और वही कर रहा है, करना चाहता है। कैसे बताएगी उनको? वे तो कैसा मुंह बनाएंगे। ममी सोचेगी कैसा लद्धड़ लड़का चुना है .... स्कूली टीचर? वह ममी के चेहरे पर आए उतार चढ़ाव की बहुत सही कल्पना कर सकती है। उसके बाद ममी बहुत देर तक उससे बात नहीं करेंगी। सोंच में पड़ जाएंगी। शायद रोएं धोयें भी कि उनके उम्र भर के खयाली पुलावों पर पानी पड़ गया। कहां उनकी बेटी तो आर्किटेक्ट है और जंवाई स्कूली टीचर?

यों है तो नेहा के ही स्कूल ऑफ आर्किटेक्ट का स्नातक पर सर पर हाइस्कूल के बच्चों का दिमाग दुरुस्त करने का फितूर! ममी शायद किसी को उसके धंधे के बारे में बताना भी न चाहें। उसने ममी की प्रतिक्रियाओं को बहुत पहले से जान लिया है। उसकी एक सहेली के बारे में वे पहले ही कह चुकी हैं – "नियति खुद ही इतनी ब्राइट और खुबसूरत लड़की है। यह एक स्कूली टीचर के शिकंजे में कैसे फंस गयी? नेहा को ममी के कहने के अंदाज से बहुत बुरा लगा था। उसने नियति की पैरवी करते हुए ममी को समझाने की कोशिश भी की थी – "ममी वह तो बड़ा आइडियलिस्टिक लड़का है। उसका ढेर सारे पैसे कमाने में विश्वास नहीं है। वह बच्चों की जिन्दगी बनाना चाहता है। ममी अगर स्कूली टीचिंग में अच्छे और ब्राइट लोग नहीं जाएंगे तो इस देश के नागरिक कैसे अच्छे बनेंगे? सब कोई युनिवर्सिटी में ही पढ़ाने लगें और स्कूलों में न पढ़ाना चाहें तो स्कूलों में पढ़ाने कौन आएगा?

ममी ने उसे चुप करा दिया था – "फिक्र मत कर बहुत हैं स्कूलों में पढ़ानेवाले। मैं तो सिर्फ यह कहना चाहती थी कि नियति उससे कही बेहतर के योग्य है। बाकी सयाना कौवा गू पर ही बैठे तो कोई क्या कर सकता है?

नेहा फिर भी पैरवी करती ही रही थी – "ममी अभी अगर वह स्कूली टीचर है तो इसका यह मतलब नहीं कि सारी उम्र यही बना रहेगा। यहाँ लोग प्रोफेशन बदलते रहते हैं। कल को युनिवर्सिटी में पी एच डी में दाखिला लेकर बाद में युनिवर्सिटी का प्रोफेसर भी बन सकता है। या जो कुछ भी करना चाहे। यों स्कूली टीचर की तनख्वाह भी कालेज प्रोफेसर से कम नहीं होती बाकी यहाँ हिन्दुस्तान वाली बात नहीं है कि एक बार जो बन गए वही रास्ता सारी उम्र के लिये हो गया।"

"ठीक है ज़ादा बड़ बड़ मत कर। हर वक्त मुझी को शिक्षा देती रहती है।" ममी को इस बात का भी गुस्सा आता है कि बजाय वे अपनी बेटी को शिक्षा दें उल्टे वही उनको भाषण देती रहती है जैसे कि वह अनुभवी दादी अम्मा हो और ममी मात्र एक बच्ची? बच्ची को आज़ादी देने का यह फल मिल रहा है उनको! " पर पापा से उसकी इस तरह पेश आने की हिम्मत नहीं होती। पापा से डरती है और उनकी बात ध्यान से समझती भी है। माँ को तो कुछ समझती ही नहीं।"

पापा जब उसे सड़क की लय समझा रहे थे तो नेहा को लगा जैसे पापा बहुत कुछ समझते हैं। अब वे उसकी तोतली बोली सुनने की फरमाइश भी नहीं करते। ताकि उस बात का अपने ऊपर हंसते हुए जिक्र करते हैं कि कैसे उनको यह बोली पहले मीठी लगा करती थी।

पर अब नेहा बड़ी हो गयी है और उसे बड़ों की तरह ही बोलना चाहिये। सोचते सोचते अचानक उसकी हिम्मत पड़ गयी थी – "पापा ड्राइविंग प्रैक्टिस के बाद मुझे पीटर के यहाँ छोड़ देंगे?"

"पीटर कौन? यह कोई नया दोस्त है तुम्हारा?"

"नया नहीं स्कूल में साथ पढ़ता था अब वह फिर न्यूयार्क में लौट आया है।"

"कहाँ छोड़ना है?"

"फोर्टी फिफ्थ स्ट्रीट पर।"

"क्या जगह? कोई रेस्ट्रां है?"

"नहीं।"

"रहता हैं वहाँ?"

"हाँ", कुछ हिचक के साथ नेहा ने उगला था छोटासा 'हां'

पापा ने हैरानी साफ न झलकाते हुए पूछा था, "तुम उसके अपार्टमेंट में जाओगी?"

"मेरी उससे बहुत पुरानी दोस्ती है।"

पापा का भय, कर्तव्यपरायणता, समझदारी सभी कुछ उनके चेहरे पर भरपूर उतर आए थे। कुछ सचेष्ट संयमित स्वर में बोले– "लेकिन जानती हो न किसी लड़के के अपार्टमेंट में इस तरह जाना.. ... क्या वहाँ और भी लोग होंगे?"

"मुझे मालूम नहीं .... पर शायद मुझी को बुलाया है।" वह चाहती थी कि पापा सच जान जाएं और सच बोलने की भी हिम्मत नहीं हो रही थी। पापा जान जाएं और चुप रह अपनी सम्मति दे दें ऐसी ही भीतरी ख्वाहिश थी उसकी।

"तो तुम्हारी इतनी दोस्ती है कि .. ? "

"हूं"

"क्या तुम उससे प्यार करती हो?"

"हूं? मालूम नहीं"

"अगर तुम उसके अपार्टमेंट में अकेली जा रही हो तो तभी जाओ अगर वह इन्सान तुम्हारे लिये खास है, वर्ना कुछ ऐसा वैसा हो गया तो गलत होगा।"

"पापा वह खास तो है।"

"इसका मतलब तुम उसे प्यार करती हो।"

"मालूम नहीं। हम बहुत पक्के दोस्त हैं।"

"या और कोई लड़का तुम्हारा इतना पक्का दोस्त है।"

"नहीं।"

"तो फिर यही तुम्हारा खास है। तुम शायद उसे प्यार भी करती हो। मेरे सामने गवारा करने से घबराती हो।"

"अभी मालूम नहीं कुछ कह नहीं सकती। हो सकता है करती हूं।"

नेहा हैरान थी यह कैसी बातचीत उसमें और पापा के बीच हो रही है आज? उसे अचानक महसूस हुआ कि पापा की निगाह में वह सचमुच बड़ी हो चुकी है। पापा समझते हैं सब। बस वही घबराती रही है इस तरह की बातचीत से।

"तुम चाहो तो मैं मिल लूंगा उससे।"

"लेकिन पापा ऐसी कोई सीरियस बात नहीं। मैं खुद भी नहीं जानती यह रिश्ता किस तरह का आकार लेगा।"

"पर अगर तुम्हें अपने पर भरोसा या उसके मन का ज्ञान नहीं तो उसके अपार्टमेंट में क्यों जा रही हो? .... एक बात कहूं?"

अचानक एक डर का भाव जागा – क्या कहेंगे पापा?

"देखो बेटे मैं खुद चूंकि एक मर्द हूं। इसलिए मर्द के नजरिये की ही सलाह दूंगा। कोई भी लड़की इस तरह जब पुरुष के पास जाती है तो पुरुष उसकी कद्र नहीं करता। अपने आप को दुर्लभ बना कर रखो तो देखो कैसे लड़के पीछे भागते हैं।

"पापा! नेहा ने कहना चाहा कि अब तक तो उसने खुद को दुर्लभ ही बना कर रखा हुआ है। पर उसे ऐसे कोई पीछे भागने वाले नहीं मिले।

जो आए वे उससे पहले दोस्ती ही करना चाहते थे, उसे जानना चाहते थे अगर वह खुद सबसे दूर रहती है तो आत्मीयता ही कहां बनती, दोस्ती ही क्यों कर होती?

नेहा ने गौर किया कि पापा आखिर पापा ही थे। बेटी की अस्मत को लेकर घबराए हुये पर उनका कहने का अंदाज रौबीला नहीं दोस्ताना था।

पापा को आश्वस्ति देने का मन हो आया था नेहा का।

"हम लोग साथ साथ एक प्रोजेक्ट पर भी काम कर रहे हैं।"

"कैसा प्रोजेक्ट?"

नेहा को कहते हुए लगा कि वह झूठ नहीं बोल रही थी। पीटर और उसने इस बारे में काफी लंबी बातचीत कर रखी थी। चाहे आज वह सिर्फ इसी बातचीत के सिलसिले में नहीं जा रही थी और भी बहुत सी गप्पे मारनी थीं।

कहीं उसे भी अंदाज था कि अपने अपार्टमेंट में के सूनेपन में छू भी सकता है और छूने से आगे भी ... । नेहा सिर से पाँव तक सिहर गयी पर इस सिहरन में डर से ज्यादा चुनौती थी और उसे महसूस हो रहा था कि वह हर तरह की चुनौती के लिये आज तैयार थी। साथ ही वह यह भी जानती थी कि पूरी तैयारी के बावजूद वह पीटर के साथ सिर्फ फिल्म का चर्चा करके भी आ सकती थी। नेहा को भी समझ नहीं आता था कि क्या अच्छा है क्या गलत!

वे लोग हाईवे से उतर कर पहले एवेन्यू पर आ गये थे। सामने पीली बत्ती थी। पीछे गाडियां आ रही थीं। पापा बोले, " चलती रहो" और समझाने लगे उसे, "पीली बत्ती पर गाड़ी रोकनी होती है पर अगर तेज़ गति से चल रहे हों और अचानक पीली बत्ती हो जाए तो गाड़ी की गति तेज़ कर के निकल जाना चाहिये वर्ना पीछे से उसी तेज गति से आती गाड़ी मार सकती है।

फिर अचानक जैसे ध्यान आ गया हो, बोले – "कैसा फिल्म प्रोजेक्ट है?"

"अभी तो उसकी स्क्रिप्ट ही तैयार कर रहे है। सती पर फिल्म बनाएंगे।"

"सती?"

"हां, आप इतने हैरान क्यों है?"

"तुम क्या जानती हो सती के बारे में? क्या थीम होगी?"

"हम कहानी को उन्नीसवी सदी में जड़ रहे हैं। उसमें ब्रिटिश सुधारक भी होंगे। वह अंग्रेज सती होने वाली हीरोइन को बचा लेता है और फिर उन दोनों के संवादों के बीच से हीरोइन के नजरिये में बदलाव लाया जायेगा।"

"तुम्हारा मतलब कि वह सती प्रथा का खंडन करेगी।

"पर उसे अपना धर्म बदलना पड़ता है क्योंकि हिन्दू समाज से उसे बहिष्कृत कर दिया जाता है कि वह पति की चिता से उठी क्यों?"

"पर हिन्दू धर्म हर औरत को पति के साथ जल मरने की आज्ञा तो नहीं देता। यह सब तुम्हारे अधकचरे ज्ञान को प्रगट करता है। मुझे तो इस कहानी में तुक नहीं नज़र आ रही।"

"दिस इज पोस्ट कोलोनियल स्टफ। दो बातें है पापा एक तो मैं अन्तर्राष्ट्रीय फिल्म बनाना चाहती हूं जो भारत और यहाँ, दोनों को समेटे ताकि दुनिया भर के दर्शक वर्ग को देखने में दिलचस्पी हो। दूसरे सती जैसी बुरी प्रथा पर फिल्म बनानी चाहिये और दुनिया के लोगों का इस पर ध्यान जाये ताकि इसके शमन की ओर कुछ किया जाये, तीसरे यह भी कि विषय ऐसा है कि हमें फिल्म बनाने के लिये पैसा मिलने में भी कम मुश्किल होगी।

"और तुम्हारा आर्किटक्चर?"

"फिल्म के साथ साथ वह भी चलाती रहूंगी। पीटर ने तो इसलिये हार्ड प्रेशर नौकरी छोड़ कर स्कूल में पढ़ाने का काम शुरु कर दिया है। ताकि फिल्म पर वक्त लगा सके। अभी तो शूटिंग की स्टेज आने में बहुत वक्त पड़ा है। अभी स्क्रिप्ट ही पूरा नहीं हुआ।"

उस दिन पापा ने उसे ड्राप कर दिया था। अजीब बात है कि पापा उसे समझते हैं और उसके दोस्त जैसे बनते जा रहे हैं। जबकि ज्यों ज्यों वह बड़ी हो रही है ममी का नज़रिया सकुचाया जा रहा है। एक उतावली और घबराहट सी रहती है उनमें नेहा की शादी के मसले को लेकर। नेहा को लगता है कि यह सब उनकी अमरीका में बसी हिन्दुस्तानी सहेलियों का दबाव है। वर्ना ममी बड़े ही खुले सोच वाली थीं। उसने इस बात पर ममी से आमना सामना भी किया था। चूंकि अंशुल सन्यासिनी हो गयी तुम सोचती हो मेरे साथ की सारी लड़कियाँ पागल हैं? या हो जायेंगी?

"हां वक्त पर शादी होना बहुत जरुरी है।"

"जो न हो तो?"

"तो बहुत बुरा होगा?"

"क्या बुरा होगा?"

"आखिर ये रिवाज बने हैं तो इनका कुछ मतलब ही है न?"

"मतलब तो यही है न कि बच्चे पैदा करो और गृहस्थी में लग जाओ। पर मैं तो वैसे ही जुटी हूं नौकरी में। फिल्म बनाने में। मेरे पास गृहस्थी चलाने की फुर्सत अभी कहां हैं?" जब हुई तो सोच लूंगी औए कभी न हुई तो कभी नहीं सोचूंगी।"

यही तो मुश्किल है। तुम सोचती हो कि बिना गृहस्थी के सारी उम्र कट सकती है। तभी तुमने मेरे लाख कहने के बावजूद खाना तक बनाना नहीं सीखा।

"ममी मेरे साथ के ज़ादातर लोग खाना बाहर ही खाते हैं। किसी को बनाना नहीं होता। बनाने का शौक हो तो एकाध चीज़ सीखी भी जा सकती है। पर वह ऐसा कोई मस्ट नहीं हैं जैसा तुम समझती है।"

"जा जा, तेरे से बहस कौन करे"

नेहा ममी के रुख से बेहद परेशान हो जाती थी। कहीं तो ममी दुनिया भर में ढिंढोरा पीटती थीं कि वह अपनी बेटी के साथ शादी की जबरदस्ती कभी नहीं करेंगी। अब जैसे उसकी उम्र के हर बढ़ते साल के साथ उल्टे रास्ते पर बढ़ती जा रही हैं।

नेहा का डर सच निकला। ममी ने पीटर के बारे में सवाल पूछ ही लिया।

जब पापा ने उसे पीटर के यहां ड्राप किया था उन्हीं दिनों ममी ने भी सवाल पूछा था उस रिश्ते में शादी की गंभीरता का।

ममी को टाल दिया था नेहा ने। पर अपने आप से यही सवाल वह बार बात पूछती थी और पीटर से भी। उस दिन जब पापा ने उसे पीटर के यहां ड्राप किया तो वही सब कुछ हुआ जिसका पापा को डर था। और फिर भी उसने सब कुछ नहीं होने दिया क्योंकि पापा की बात कहीं भीतर तक गड़ गयी थी।

पीटर ने उसका हाथ छुआ ही था कि वह बोल पड़ी, "अगर तुम्हारा शादी का ख्याल नहीं तो मैं इस रिश्ते को आगे बढ़ाना नहीं चाहूंगी।

पीटर ने घचके से हाथ पीछे कर लिया था। बहुत देर तक खामोश सोचता रहा था।

फिर पीटर ने उसका चेहरा दोनों हाथों मे लेकर चूम लिया और उसके कंधों को थपथपाता हुआ बोला था– "इतनी टैंस क्यों हो तुम आज? रिलैक्स! "

रिलैक्स करने का वक्त रहा नहीं। रोज किसी न किसी तरह से शादी की बात छिड़ ही जाती है। खुद को पीटर के स्पर्श से झटककर नेहा ने कहा था।

"तुम सचमुच शादी करना चाहती हो मुझसे?"

पता नहीं नेहा के मुंह से क्या निकला था। ममी पापा की पसंदगी नापसंदगी खुद पीटर के साथ भविष्य को लेकर संदेह .... कितना कुछ तो था इस जवाब की भूमिका बनता हुआ। वह शायद हां कहना चाहती थी पर मन में खीझ सी भरी हुई थी। उसकी जिन्दगी का सबसे अहम् फैसला था और उसे समझ ही नहीं आ रहा था कि क्या फैसला ले।

"तो मुझसे क्या उम्मीद करती हो? मैं तो फिलहाल शादी वादी का सोचना चाहता ही नहीं। फिर यह भी तो जरुरी है कि हम एकदूसरे को भली भांति जान लें ... पूरी तरह से ... ।

"जिस जानने की तुम बात करते हो वह शादी के बाद ही हो सकता है।"

"शादी का फैसला मैं तभी कर सकता हूं जब कि हमारी हर तरह से कम्पैटिबिलिटी हो।"

"मान लो मैं तुम्हारी बात मान भी लूं तो क्या गारंटी है कि तुम मुकर नहीं जाओगे?"

"गारंटी तो कभी होगी ही नहीं, शादी के बाद भी नहीं। क्या तुम मुझे गारंटी दे सकती हो कि मुझे छोड़ कर नहीं जाओगी।"

"हां, पर अगर तुम किसी दूसरी ओर आकृष्ट हो जाओ तो मैं तुम्हारे साथ चिपकी नहीं रहूंगी।"

"खैर ये सब कहने की बातें हैं। अगर गारंटियां होतीं तो इतने तलाक क्यों होते?" हमारा रिश्ता आज सुखद है तो कल को बिगड़ भी सकता है। रह कर पता लगता है और साथ रहने से तुम घबराती हो?"

"तुम्हें मेरी मजबूरी का पता है। मुझमें भी तुम्हें खुद को सौंप देने की उतावली तुमसे कम नहीं।"

"और इसके लिये तुम मुझसे शादी जैसी चीज़ में घसीटना चाहती हो। शादी का मतलब साथ रहना उतना नहीं जितना कि दुनियावी जिम्मेदारियों को निभाना होता है। ठीक ठाक घर, ठीक ठाक साज-सज्जा, ठीक ठाक बच्चे, सब कुछ ठीक ठाक होना होता है। मैं अभी इस सबके लिये तैयार नहीं। अगर तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो तो उस चक्कर में डालना नहीं।

और फिर बात यहाँ तक पहुंच गयी थी कि पीटर जब भी उसे छूने की कोशिश करता वह खुद को जकड़ लेती ताकि भाव में आकर कुछ गलत न कर बैठे।

एक बार उसने कह ही डाला था- "क्या बात है मेरा स्पर्श तुममें प्रतिक्रिया जगाता नहीं?"

वह यों ही जकड़ी खामोश बैठी रही थी। फिर पीटर से मिलने से कतराने लगी थी। शायद पहले अपने भीतर को सुलझा लेना चाहती थी । किस पर भरोसा करे ? पीटर पर या ममी पापा पर? वह खुद क्या चाहती है? अब छे महीने बाद ममी ने फिर वही सवाल दोहराया तो नेहा ने कितने सारे तनावों से एक साथ मुक्ति पाने के लिये बक दिया था - "मुझसे मत पूछा करो यह सवाल! यहाँ के लड़को में कमिटमेंट ही नहीं है। मैं क्या करुँ!"

नेहा के चेहरे पर जर्दी और लाली एक साथ आ जा रही थीं। ममी ने भांप लिया था और किसी अविश्यंभावी खतरे ने उनको सहमा दिया था। नेहा उसे खतरा मानती हो या न पर मन अस्वस्थ जरुर हो रहा था। उसने पापा से कहा था - "यहाँ मैनहैटन में गाड़ी चलाने का मौका ही नहीं मिलता इसीलिये कान्फिडेंस ही नहीं जमता। आपको फिर कुछ प्रैक्टिस करानी होगी।"

ममी ने उनके निकलने से पहले कह दिया था, "तू मेरी बात मान तो अभी भी देर नहीं हुई। बात चलाती हूं, कहीं न कहीं तो काम बनेगा ही।

इतनी बड़ी आर्किटेक्ट है तू कल उमा कह रही थी कि उसकी सहेली का लड़का भी कुंवारा बैठा है। मीटिंग तय कर दूं तुम दोनों की? अपने आप से ही बाहर कहीं मिल लो। हमें बीच में डालने की भी जरुरत नहीं।" पापा ने ममी को डांट दिया था - "क्यों बार बार उसे एम्बैरेस करती हो? जब शादी को तैयार होगी अपने आप बता देगी। बड़ी हो गई है। अपने बारे में खुद फैसला ले सकती है। तुम पहले तो उसे यहाँ के खुले ढंग से पालती रही हो। अब क्या फिर से पीछे ढकेलना चाहती हो?"

गाड़ी चलाते हुए नेहा को लगा कि उसकी ड्राइविंग पर पकड़ काफी अच्छी हो गयी है। थोड़ी सी प्रैक्टिस के बाद शायद वह अपने आप ही पूरे आत्मविश्वास के साथ चलाने लगेगी।

अचानक उसने पापा को कहते हुए सुना – "लाल बत्ती पर हमेशा रुका करो। कई बार आस पास ट्रैफिक नहीं होता तो इंसान की प्रवृत्ति होती है कि चलता जाए। पर अगर लाल बत्ती पर सड़क पार करने की ऐसी आदत डाल लो तो अक्सर दुर्घटना होने का खतरा हो जाता है। क्योंकि ऐसा मुमकिन है कि आप ध्यान से न देख सकें और अचानक कोई गाड़ी कहीं से निकल कर आपसे टकरा जाए।" और पापा ने दोहराया – "सो लाल बत्ती के होते सड़क पार कभी मत करना यह चेतावनी तुम्हें बार बार देता हूं।"

नेहा चौंकी। पापा उसे क्यों बतला रहे थे यह सब। क्या उसने सचमुच लाल बत्ती पार की थी? या पापा का उसे आगाह करते रहना क्या पिता के धर्म पालन से ज्यादा नहीं था? पापा के अपने मन के डर ..... । कहीं ऐसा तो नहीं कि बत्तियाँ आये जाये, चली जा रही थीं, गाड़ियाँ निकले चली जा रही थीं और वह लाल बत्ती पर ही खड़ी थी।

पापा कहते चले जा रहे थे – " यूं तुम सीख तो गयी हो अब। अच्छा चलाने लगी हो। बाकी जितना चलाओगी उतना ही आत्मविश्वास भी बढ़ेगा। बस सड़क की लय सुनना मत भूलना यही एक अच्छे ड्राइवर की निशानी है। वर्ना बार बार दुर्घटनाएं होंगी। इस देश में अपने बूते जीने के लिये गाड़ी चलाना भी उतना ही जरुरी है जितना पढ़ना लिखना। इसलिये जरुरी है कि सड़क की लय को सुनो और उसी हिसाब से चलाओ ताकि सेफ ड्राइवर बन सको।

सहसा नेहा को लगा जैसे जो पापा कह रहे हैं वह सुन नहीं रही है ..... फिर भी कुछ सुन रही है। पर जो वह सुन रही है वह शायद पापा नहीं सुन रहे हैं .... या शायद पापा कह भी नहीं रहे ... पर नेहा सुन पा रही है। कुछ ऐसा जिससे न वह वाकिफ थी न ही जिसके प्रति सजग। जैसे वे स्वर कहीं दूर से .... किसी बहुत गहरे समुद्र से उठे हों ... बहुत अस्पष्ट, भारी और गीले से! अपने ही बोझ से झुके ... कि सतह पर आएं भी तो जलराशी में निमग्न ... पहचान से बाहर ... जो किन्ही शब्दों में नहीं ढल पाते या सुने जाते। किसी लहर की ही तरह कहीं से उठते और वहीं समा जाते हैं ... ।

क्या वही थी सड़क की लय!

पापा कह रहे थे – "तुम मुझे पहले घर ड्राप कर दो , इसके बाद जहाँ जाना है चली जाना।"

पर यह तो पापा की आवाज़ नहीं थी। कुछ ऐसी आवाज थी कि लगता था उसकी अपनी आवाज से ही मिलती जुलती है। .... सामने हरी बत्ती भी शायद। नेहा ने गाड़ी चला दी । ।

ग़ज़ल

देवकी नन्दन 'शांत'

मैंने लहू से एक दिया क्या जला दिया
लोगों ने एक और दिया फिर बुझा दिया।
उस वक़्त दीं हवा ने किवाड़ों पे दस्तकें
मैंने कोई चिराग़ जो घर में जला दिया।
लोगों ने जो भी चाहा लिया है समाज से
लोगों ने पर समाज को बदले में क्या दिया!
खुशियों का हाल जानने निकला था घर से मैं
कुछ ख़ास दोस्तों ने गमों को बता दिया।
उसने भी आना छोड़ दिया जब ख़याल में
मैंने भी 'शांत' उसको न अपना पता दिया।

हाँ मैं औरत हूँ

डॉ. मधुरिमा सिंह

हाँ मैं औरत हूँ
एक महावृक्ष : गमले में उगा हुआ
मेरी जड़ें
अपनी जमीन की गहराइयाँ
खो चुकी थीं
मेरी चिंतन की टहनियाँ
छाँटी जा चुकी थीं
मेरी अभिव्यक्ति और
संवेदना की कोपलें
नुच चुकी थीं
मेरी मुट्ठियों में
मेरा आकाश नहीं
मेरे आकाश का
आभास भर था
हाँ मैं औरत हूँ
पुरुष की हथेली पर
बौना करके
उगाया गया एक महावृक्ष

प्रीत न जाने कोय

विजय अस्थाना

मिताली अपनी हवेली के छज्जे से आकाश में उड़ते पक्षियों को एकटक निहारती, उनकी स्वच्छंदता पर मुग्ध हो रही थी। काश! वह भी पक्षी होती तो इस दम-घोटू-सी हवेली में इधर-उधर भटकती सुबह से शाम न करती। नौकर-चाकर भरे पड़े हैं। एक पत्ता तोड़ने नहीं देते। माँ ने बचपन में ही साथ छोड़ दिया था। कितना प्यार करती थी। माँ की बीमारी की एक-एक बात सोच कर मन में पीड़ा होती थी। पर किसे कहे सारी बातें। दस तक पढ़ने के बाद पढ़ाई बंद करा दी गई थी। बाबू वंशगोपाल एक दबंग ज़मीदार थे। आते-जाते लोग उनकी युवा पुत्री पर बुरी नज़र डालते तो उनकी शान में बट्टा न लग जाता। इसलिए घर पर ही उसकी रुचि देख कर नृत्य-संगीत की शिक्षा दी जाने लगी। पर पक्षी को कभी पिंजरा रास आया है? वह उड़ते पक्षियों में ख़ुद को तलाशती और मन-ही-मन कल्पना की उड़ान भर के ख़ुश हो लेती।

रोज़ की तरह आज भी वह पक्षियों को देख रही थी कि अचानक उसकी नज़र एक युवक पर पड़ी जो सहमा-सहमा-सा पूरी हवेली का जायज़ा ले रहा था। गबरू जवान, सौम्य, सुशील और उसे देख कर शरमाया-सा। उसने झुक कर ज़मीदार साहब के पैर छुए। मिताली को वह युवक कुछ पहचाना-पहचाना-सा लगा। वह अपने को रोक न पाई और नीचे उतर कर बरामदे तक चली गई, पर उसे ठीक से याद नहीं आ रहा था कि वह कौन है। उसकी समस्या का समाधान किया उसके बापू ने।

'मीतू' पहचाना इसे? यह है मोहन। अरे अपने मंगरू का बेटा। तुम्हारे साथ पढ़ता था। दिल्ली जाकर बी.ए. कर लिया है इसने। अब यहीं रह कर मेरा हिसाब-किताब देखेगा। मंगरू को भी खाने-पीने का ठिकाना हो जाएगा। जमींदार साहब ने प्राय: डाँटते हुए मोहन को मुंशी जी के काम में हाथ बँटाने के लिए उनके पास जाने को कहा।

मिताली अचानक दस वर्ष पूर्व के जीवन में वापस लौट गई। तब वह, मोहन और बहुत सारे गाँव के लड़के-लड़कियाँ एक साथ पढ़ा करते थे। मरियल-सा मोहन, जीर्ण-शीर्ण कपड़े पहन कर आता और हमेशा पीछे की कुर्सी पर बैठता। कक्षा में सबसे होशियार पर दब्बू। कभी भी आँख उठा कर उसकी ओर नहीं देखा, पर मौका मिलने पर कनखियों से जरूर देखता और प्राय: देखता। इसका आभास तो उसे था और उसकी होशियारी से उसे रश्क भी होता था पर चूँकि वह जमींदार की बेटी थी और वह उसके बाप की सहायता से पलने वाले परिवार का बेटा था, इसलिए उसने उसे कभी भी महत्व नहीं दिया था। जब भी मास्टर जी के पूछने पर मोहन जवाब देता और पूरी कक्षा की पिटाई होती तो उसका मन करता कि वह सब लोगों के साथ मिल कर मोहन की खूब पिटाई करे।

वही मोहन आज एक सुदर्शन युवक होकर उसके सामने खड़ा था। उसे लगा जैसे वह उसके काफी करीब हो। बापू के काम पर जाते ही उसने उसे बुलाया।

'मोहन', तुम्हें स्कूल के दिन याद हैं? याद तो हैं बीबी जी, पर वह तो स्कूल के दिन थे। 'एक बात तू अभी याद कर ले, वह उसे हमेशा 'तू' कहती थी, 'तू मुझे मीतू कहेगा, मीतू, बीबी जी नहीं,

समझे।' 'जी बीबी जी, ...मीतू।' 'और आँख उठाकर बात करेगा' उसने पहली बार पूरी आँख से मीतू को देखा था। पर इस बार मीतू की आँखें झुक गई थीं। परंतु इतने से पल में आँखों ने आँखों से न जाने कितनी बातें कह दी थीं।

मिताली आज असामान्य हो गई थी। उसकी भावनाएँ अनियंत्रित हो गई थीं। बार-बार मरियल-सा मोहन उसके सामने आकर खड़ा हो जाता। उसे रह-रह कर स्कूल की सारी बातें चल-चित्र की भाँति एक-एक करके उसकी पलकों में सिमटने लगीं। उसे याद आया, एक दिन जब वह हिन्दी का पीरियड ख़त्म होने पर तेजी से बाहर निकली थी और कक्षा में आते हुए मोहन से टकरा गई थी। मोहन गिर गया था; उसके पैर से खून निकलने लगा था पर उसने फिर भी उसे तड़ातड़ दो थप्पड़ रसीद किए थे। उसने आँख तक ऊपर नहीं की थी और सामना पड़ने पर अपराधी-सा महसूस करता था। पर आज उसे अपने पर ग्लानि हो रही थी। वह इस बदलाव का कारण नहीं समझ पा रही थी। संभवत: 'प्यार के रीते रेगिस्तान में नखलिस्तान-सा थोड़ा-सा स्नेह भी बहुत सुख देता है।'

शाम हो गई थी पर मोहन अभी भी मुंशी जी के साथ काम कर रहा था। मिताली बरामदे की उस खिड़की तक चली आई जहाँ से मोहन साफ़ दिखाई दे रहा था। उसने उसके बलिष्ठ शरीर का पोर-पोर मुआयना करना शुरू कर दिया और गालों तक आकर रुक गई। इन्हीं गालों पर तो उसने थप्पड़ जड़े थे। अचानक मोहन जाने को उत्सुक हुआ। सामने मिताली को देख कर झेंप-सा गया। 'झेंपू' उसने धीरे से कहा। मोहन ने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया। उसे अपनी धृष्टता पर क्षोभ हुआ। एक ही दिन में कितनी धृष्ट हो गई है वह।

और मोहन, वह तो मन ही मन खिल रहा था, मिताली के अपनत्व भरे स्नेह से। आख़िर दिल की बात दिल तक तो जाती ही है। 'अच्छा चलूँ', बापू को दवा देनी है। समय के साथ-साथ दोनों यह महसूस करने लगे थे कि वे एक-दूसरे के काफी करीब आ चुके हैं। मिताली मोहन से बेहिचक सारी बातें कह देती और वह प्रतिक्रिया-स्वरूप अपनी राय देता था। एक दिन तो मिताली ने साफ़-साफ़ कह दिया - 'मोहन, अब मेरा जीवन तुम्हारे बिना मुश्किल है।'

'मीतू, अब मैं भी यह महसूस करता हूँ कि तुम्हारे बिना नहीं रह सकता लेकिन हमारे बीच जाति की दीवार है। मैं ठहरा छोटी जाति का और तुम.....'

'दिल का आवेग सारी दीवारें गिरा देता है, बस तुम मेरे साथ खड़े रहो'

'और ठाकुर साहब.....'

'मैं उनसे निपट लूँगी, अगर वह मान गए तो ठीक, नहीं तो हम यह गाँव छोड़ देंगे। दुनिया बहुत बड़ी है। हम एक छोटी-सी दुनिया बसायेंगे अपनी, जहाँ न दर होगी न दीवार होगी और न जमाने की बन्दिशें होंगी।'

तो फिर कल क्यों? जो काम कल करना है उसे आज ही क्यों न अंजाम दे दें। हम कब तक अपना जीवन दूसरों की इच्छाओं पर और दूसरों के सुख के लिए जीते रहेंगे?

दोनों गाँव छोड़ कर दूर जा चुके थे। वंशगोपाल बाबू हाथ मल-मल कर टूट चुके थे।

आज एक अर्से के बाद हवेली में फिर चहल-पहल हो रही थी। आज कलेक्टर साहब का दौरा था उस क्षेत्र में। दोपहर में खाने की व्यवस्था उन्हीं के घर पर थी। कलेक्टर रवि को नदी के किनारे बनी

उनकी हवेली बड़ी अच्छी लगी। औपचारिक बातचीत के बाद सब लोग बैठक में खाने के लिए चले गए। रवि एक-एक करके बैठक की सभी चीजों, मूर्तियों और तस्वीरों का मुआयना करता और उसकी तारीफ करता रहा। अचानक एक तस्वीर के सामने वह ठिठक गया। उसने वंशगोपाल बाबू से पूछा, 'ठाकुर साहब, यह तस्वीर किसकी है?'

'छोड़ो बेटा', उनकी आवाज़ भर आई थी! क्यों बीते दिनों की याद दिलाते हो? यह मेरे युवावस्था की तस्वीर है, यह मेरी पत्नी और यह मेरी बेटी है। अब मैं अकेला हूँ। पत्नी और पुत्री दोनों ही भगवान को प्यारे हो गए।'

'ठाकुर साहब, आप झूठ बोल रहे हैं। वह अभी भी जिंदा हैं और दिल्ली में हैं।' वह अपने पर काबू नहीं रख पाया और एक साँस में ही कह बैठा।

'होगी बेटा, पर मेरे लिए तो उसी दिन मर गई जिस दिन उसके पैर इस हवेली के बाहर पड़े। अब तो मैंने उसका अंतिम संस्कार भी कर दिया है।'

'नहीं ठाकुर साहब, नहीं! वह मेरी माँ हैं और आप मेरे.....।'

ठाकुर साहब एकटक उसका चेहरा देखते रह गए। उसके चेहरे में शायद उन्हें अपनी मिताली नज़र आ रही थी।

परख

आस्था नवल

खींचो न मुझे,
वृक्ष हूँ, अपने आप ही बढ़ूँगी,
मोड़ो न यूँ,
नदी हूँ, रास्ता बना ही लूँगी
रौंदो न ऐसे,
ज़मीं हूँ, सब कुछ सहूँगी
तुम्हारे किसी प्रयास के बिना भी
तुम्हारे अनुसार ही चलूँगी
स्त्री हूँ
पुरुष को युगों से पहचानती हूँ मैं।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम और महर्षि अरविन्द

उपेन्द्र नाथ 'अनन्य'

सन् १८८५ में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की स्थापना के साथ छोटे पैमाने पर लेकिन संगठित रूप में विदेशी शासन से भारत की मुक्ति का संघर्ष आरम्भ हो गया था। आरम्भ से ही काँग्रेस ने एक पार्टी नहीं बल्कि एक आंदोलन का काम किया। १८८६ में काँग्रेस के ४३६ प्रतिनिधि विभिन्न स्थानीय संगठनों तथा समूहों द्वारा चुने गये थे। जल्द ही इसके प्रतिनिधियों की संख्या हज़ारों में पहुँच गयी।

आरम्भ के राष्ट्रवादी नेताओं का विश्वास था कि देश की राजनीतिक मुक्ति के लिए सीधी लड़ाई लड़ना अभी व्यावहारिक नहीं था। बड़ी संख्या में भारतीय जनता को राष्ट्रवादी राजनीति की धारा में लाकर राजनीति तथा राजनीतिक आंदोलन के लिए शिक्षित करना ज़्यादा व्यावहारिक और प्रासंगिक था। इस बारे में पहला महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक प्रश्नों में जनता की रुचि विकसित करना तथा देश में जनमत का संगठन करना था। साथ ही राष्ट्रीय स्तर पर लोकप्रिय माँगों का निरूपण किया जाना था ताकि उभरते हुए जनमत को एक अखिल भारतीय स्वरूप मिल सके। सबसे महत्वपूर्ण बात तो थी, पहले-पहल राजनीतिक चेतना प्राप्त भारतीयों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं में राष्ट्रीय एकता का संचार करना। आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अपनी राजनीतिक तथा आर्थिक माँगों का निर्धारण इस बात को दृष्टि में रख कर किया कि भारतीय जनता को एक साझे आर्थिक राजनीतिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करना है।

हालाँकि इस आलोचना में बहुत कुछ सच्चाई है कि राष्ट्रवादी आंदोलन और राष्ट्रीय काँग्रेस को आरंभिक चरण में अधिक सफलता नहीं मिली कि जिन सुधारों के लिए राष्ट्रवादियों ने आंदोलन छेड़े उनमें से बहुत थोड़े सुधार ही सरकार ने लागू किए। फिर भी आरंभिक राष्ट्रीय आंदोलन को असफल घोषित करना भी सही नहीं लगता। ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाए तो जो काम आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अपने हाथ में लिया था, उसकी तात्कालिक कठिनाइयों को देखते हुए इस आंदोलन का इतिहास बहुत उज्ज्वल है। निश्चित रूप से यह अपने समय की सबसे प्रगतिशील शक्ति का सूचक था। यह व्यापक राष्ट्रीय जागृति लाने तथा जनता में एक ही भारतीय राष्ट्र के सदस्य होने की भावना जगाने में सफल रहा। इसने जनता को राजनीतिक कार्य में प्रशिक्षित किया, उनमें प्रजातन्त्र, नागरिक स्वतंत्रताओं, धर्म निरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, उनमें आधुनिक दृष्टिकोण जगाया तथा ब्रिटिश शासन की बुराइयों को उनके सामने रखा। सबसे बड़ी बात तो यह कि भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के सही चरित्र को निर्ममतापूर्वक उजागर करने में आरंभिक राष्ट्रवादियों ने अग्रगामी भूमिका निभाई। जो भी हो, यह तो कहना ही पड़ता है कि अपनी तमाम कमियों के बावजूद आरंभिक राष्ट्रवादियों ने वह बुनियाद बनाई जिस पर राष्ट्रीय आंदोलन आगे और भी विकसित हुआ।

अपने आरंभिक काल में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने जनता की भावना को ही बदल दिया था तथा देश में एक नये जीवन का संचार किया था। साथ ही साथ राष्ट्रवादियों की एक माँग मानने में ब्रिटिश सरकार की असफलता ने राजनीतिक चेतना प्राप्त लोगों में उस समय वर्चस्व प्राप्त नरमपंथी नेतृत्व के सिद्धांतों व विधियों के प्रति असंतोष पैदा कर दिया था। नरमपंथी राष्ट्रवादियों की माँगें मानने की जगह ब्रिटिश शासक उनकी हँसी उड़ाते और उन्हें नीची निगाहों से देखते थे। परिणाम यह हुआ था कि सभाओं, प्रार्थना-पत्रों, स्मरण-पत्रों और विधायिकाओं में भाषणों की जगह और भी जोरदार राजनीतिक कार्यवाइयों, और तरीकों की माँग उठने लगी।

१८९२ और १९०५ के बीच घटित घटनाओं खासकर राजनीतिक घटनाओं ने भी राष्ट्रवादियों को निराश करके उन्हें और भी उग्र राजनीति के बारे में सोचने को विवश कर दिया। १८९२ का 'इंडियन काउंसिल एक्ट' घोर निराशा का कारण सिद्ध हुआ। जनता को जो भी थोड़े से राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे, उन पर हमले किए गए। १८९८ में एक कानून बनाकर विदेशी शासन के प्रति 'असन्तोष की भावना' फैलाने को अपराध घोषित करना, १९०४ में 'इंडियन ऑफ़िशियल सेक्रेट्स एक्ट' बनाकर प्रेस की स्वतंत्रता को सीमित करना, १८९९ में कलकत्ता नगर निगम में भारतीय सदस्यों की संख्या घटाना, १८९७ नाटू भाइयों को बिना मुक़दमा चलाये देश निकाला देना, तिलक और दूसरे समाचार-संपादकों को लम्बी-लम्बी जेल सजाएँ देना आदि कदमों ने जनता के सामने ब्रिटिश शासन का पर्दाफाश कर दिया। नरमपंथी गोखले ने भी शिकायत की कि 'नौकरशाही खुल कर स्वार्थी और राष्ट्रीय आकांक्षाओं की शत्रु बनती जा रही है।'

१९वीं सदी के अंत तक भारतीय राष्ट्रवादियों का आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बहुत बढ़ चुका था। उन्हें विश्वास हो चुका था कि वे स्वशासन करने एवं देश का विकास करने में समर्थ हैं। यों तो राष्ट्रीय आंदोलन के लगभग आरम्भ से ही उग्र राष्ट्रवाद का एक सम्प्रदाय देश में मौजूद था जिसके प्रतिनिधि बंगाल में राजनारायण बोस, अश्विनी कुमार दत्त तथा महाराष्ट्र में विष्णु शास्त्री चिपलुंकर जैसे नेता थे पर बीसवीं सदी के आरम्भ में उग्र राष्ट्रवादी सम्प्रदाय को एक अनुकूल राजनीतिक वातावरण प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन के दूसरे चरण का नेतृत्व करने के लिए अब इसके समर्थक भी आगे बढ़े। इस सम्प्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण प्रतिनिधि तिलक थे। इनके अलावा विपिन चन्द्र पाल, अरविंद घोष और लाला लाजपतराय थे। उग्र राष्ट्रवादियों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की कि राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य स्वराज्य या स्वाधीनता है। उन्हें जनता की शक्ति में असीम विश्वास था इसलिए उन्होंने जनता की सीधी राजनीतिक कार्यवाही पर ज़ोर दिया। वर्षों के कालक्रम में देश में धीरे-धीरे उग्र राष्ट्रवाद या गरमपंथ का विकास होता आ रहा था। पर, यह १९०५ के बंगाल विभाजन विरोधी आंदोलन में अभिव्यक्त हुआ।

जब बंगाल-विभाजन विरोधी आंदोलन का मोर्चा उग्र राष्ट्रवादियों ने सँभाला तो उन्होंने स्वदेशी बहिष्कार के अलावा निष्क्रिय प्रतिरोध का आह्वान भी किया। उन्होंने जनता से आग्रह किया कि वह सरकार के साथ सहयोग न करे और सरकारी सेवाओं, अदालतों, सरकारी स्कूल-कॉलेजों, नगरपालिकाओं और विधान-मंडलों का बहिष्कार करें, अर्थात् अरविंद घोष के शब्दों में 'वर्तमान परिस्थितियों में प्रशासन चला सकना असम्भव बना दें।' उग्र राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी और विभाजन-विरोधी आंदोलन को जन-आंदोलन बनाने की कोशिश की और विदेशी शासन से मुक्ति का नारा दिया। अरविंद घोष ने खुलकर घोषणा की कि 'राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राणवायु है।' इस तरह बंगाल-विभाजन का प्रश्न गौण हो गया और भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न भारतीय राजनीति का केन्द्रीय प्रश्न बन गया। उग्र राष्ट्रवादियों ने आत्म-बलिदान का आह्वान भी किया कि इसके बिना कोई भी महान उद्देश्य प्राप्त नहीं किया जा सकता।

इस लेख का उद्देश्य है - स्वतंत्रता संग्राम में अरविंद के योगदान का विवेचन-विश्लेषण करना। सवाल यह उठता है कि कौन-कौन सी बातों ने अरविंद जैसे प्रतिभावान बहुमुखी व्यक्तित्व को राष्ट्रीय आंदोलन के केंद्र में ला खड़ा किया? सबसे पहले अरविंद जी का संक्षिप्त परिचय एवं भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उनके कूद पड़ने की प्रेरणा आदि के बारे में जानकारी देने का प्रयास करना जरूरी है।

अरविंद घोष का जन्म प्रसिद्ध सिविल सर्जन डॉ. कृष्णधन घोष के यहाँ (वर्तमान कोलकाता में) पंद्रह अगस्त, अठारह सौ बहत्तर को हुआ - अरविंद कितने सौभाग्यशाली रहे कि भारत को स्वतंत्रता की प्राप्ति भी उनके जन्म-दिन को ही हुई। प्रारम्भिक शिक्षा दार्जलिंग में प्राप्त करने के बाद सात वर्ष की अवस्था में वे अपने अन्य दो भाइयों के साथ इंग्लैंड भेजे गये। उनके पिता चाहते थे कि अरविंद, पूर्णतया

यूरोपीय परिवेश में अपने व्यक्तित्व का निर्माण करे। अरविंद का विकास भारत, इसके निवासियों, इसकी संस्कृति की पूरी अनभिज्ञता में हो, उनके पिता ऐसा चाहते थे।

इंग्लैंड में अरविंद ने लैटिन, ग्रीक, इटालियन, जर्मन, स्पैनिश आदि भाषाएँ सीखीं तथा अंग्रेजी कविता, साहित्य, गल्प, फ्रेंच साहित्य, यूरोप का इतिहास आदि का अध्ययन किया। उन्होनें कविताएँ भी लिखीं। बाद में 'भारतीय सिविल सेवा' में भी उनका चयन हुआ पर घुड़सवारी में फेल हो जाने के कारण अंतिम चयन नहीं हो पाया। वस्तुत: आई.सी.एस. में जाने की उनकी इच्छा नहीं थी और घुड़सवारी में असफल होने को उन्होंने बहाना बनाया।

ऐसा मालूम पड़ता है कि पिता द्वारा भेजी जाती रही 'द बंगाली अख़बार' की कतरनों ने अरविंद की दिलचस्पी पहली बार भारतीय राजनीति में पैदा की। इसी दिलचस्पी ने कालांतर में उन्हें अपने देश की स्वतंत्रता के लिए कुछ करने की चाहत दी। वे कैम्ब्रिज में पढ़ने के दौरान १८९१ में स्थापित संगठन 'इंडियन मजलिस' के सम्पर्क में आए और बाद में वे इस संगठन के सचिव भी चुने गए। इसके वाद-विवाद में उन्होंने क्रांतिकारी भाषण दिए। कुछ जोशीले नौजवानों ने एक गुप्त संगठन 'द लोटस एंड डैगर' की स्थापना की जिसके सदस्यों में अरविंद भी शामिल हो गए। श्री अरविंद ने इस संस्था को 'म्रतभ्रूण' की संज्ञा दी है पर भारत आने पर आगे चल कर गुप्त क्रांतिकारी संस्थाओं के साथ उनके जितने घनिष्ठ सम्पर्क हुए, उन्हें देखते हुए यह घटना भी कम महत्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती। यद्यपि यह कहना ठीक है कि इस समय उनके मन में देशोद्धार की प्रेरणा यूरोपीय थी तथापि इतना तो सुस्पष्ट है कि कैम्ब्रिज में रहते समय वह देशप्रेम की गहरी भावनाओं से ओत-प्रोत हो चुके थे और विदेशी आधिपत्य से जन्म-भूमि को मुक्त करने के लिए अपना जीवन समर्पित करने की अभिलाषा उनके मन में जागृत हो चुकी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वे मेज़िनी के 'रिसोरजिमेंटो' से भी प्रभावित हुए थे। वे भारत लौटने के लिए आतुर हो गए थे और बड़ौदा के स्वर्गीय महाराजा द्वारा बड़ौदा राज्य की सेवा में चुन लिए जाने के कारण सुनहला मौका भी आ ही गया।

वे इंग्लैंड में तेरह वर्ष के प्रवास के पश्चात् ६ फरवरी १८९३ को बाईस वर्ष की अवस्था में भारत लौटे। इससे ग्यारह वर्ष पहले बंकिम चंद चटर्जी का 'आनंदमठ', जिसमें मातृ-भूमि की स्तुति 'वन्दे-मातरम्' सम्मिलित थी, प्रकाशित हो चुका था। स्वामी विवेकानन्द भारत परिभ्रमण की अपनी पहली तीर्थ-यात्रा का अंतिम चरण पूरा करके अमेरिका की जल-यात्रा की तैयारी कर रहे थे। किन्तु राजनीति के क्षेत्र में आने में बारह वर्ष और लगने थे।

फिलहाल तो आठ वर्ष पुरानी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस को, जिसके सदस्य अधिकांशतः अंग्रेजियत में रचे-पचे समाज के उच्च वर्ग से लिए गए थे, अंग्रेजों की निष्पक्षता में, और भारत में अंग्रेजों के शासन को 'नियति के विधान' के रूप में मनाने में पूरा विश्वास था, और वर्ष-प्रतिवर्ष ब्रिटिश सम्राट के प्रति वह अपनी अविचल निष्ठा की शपथ लेती जाती थी। वह केवल याचिकाएँ प्रस्तुत करके ही संतुष्ट रहती, औपनिवेशिक प्रशासक सरलता से जिनकी अनदेखी कर जाते। १९०५ में खुले तौर पर स्वाधीनता संग्राम के प्रारम्भ होने में बारह वर्ष का एक और दौर गुजरना शेष था और १९१८ में राजनीति के पटल पर महात्मा गाँधी के प्रवेश के पहले पच्चीस वर्ष और बीतने शेष थे।

वे १८९३ से १९०७ तक लगातार करीब चौदह वर्ष बड़ौदा राज्य की सेवा में रहे। यद्यपि सेवा के अंतिम वर्षों में उन्होंने राष्ट्रीय गतिविधियों में भाग लेने के लिए लम्बी अवधि की छुट्टियाँ भी लीं। उन्होंने बम्बई के मराठी-अंग्रेजी दैनिक 'इंदु प्रकाश' में जब 'न्यू लैंप्स फॉर ओल्ड' शीर्षक से नौ लेखों की एक माला लिखी तब वे इक्कीस वर्ष के थे। इन लेखों में, जिनका प्रकाशन समाचार-पत्र के संपादक पर दबाव डाल

कर बंद करा दिया गया था, श्री अरविंद ने वर्तमान स्थिति का जायज़ा लिया और काँग्रेस की 'भिखमंगी नीति' की ब्यौरेवार और कड़ी आलोचना की थी।

अगस्त ७, १८९३ - 'हम किसी भी संस्था को उठाकर अंधपूजक की कोटि में रखना गवारा नहीं कर सकते। ऐसा करने का सीधा परिणाम होगा स्वयं अपने ही तंत्र का दास हो जाना।'

अगस्त २१, १८९३ - 'हमारा वास्तविक शत्रु हमारे अपने बाहर की कोई शक्ति नहीं है, बल्कि हमारी अपनी कुख्यात कमजोरियाँ, हमारी कायरता, हमारी स्वार्थपरता, हमारा मिथ्याचार, हमारी अंधी भावुकता है।'

अगस्त २८, १८९३ - 'तब मैं काँग्रेस के संबंध में यह कहूँगा कि उसके उद्देश्य भ्रांतिपूर्ण हैं, कि जिस भावना से वह उन्हें पूरा करने के लिए अग्रसर होती है वह सच्चाई और एकनिष्ठता की भावना नहीं है, और जिन तरीकों को उसने चुना है वे सही तरीके नहीं हैं, और जिन नेताओं पर वह विश्वास करती है वे नेता बनने योग्य सही किस्म के व्यक्ति नहीं हैं। संक्षेप में यह कि इस समय हम नेतृत्व के लिए अंधों पर निर्भर हैं, पूरी तरह अंधों पर न सही तो भी कम से कम एक आँख के अंधों पर।'

१८९७ से १९०६ के प्रारम्भ तक उन्होंने बड़ौदा कॉलेज में फ्रेंच और अंग्रेजी का अध्यापन किया और बाद में उसी कॉलेज के प्रिंसिपल बन गये। इन्हीं वर्षों में उन्हें व्यक्तिगत रूप से यह अनुभव हुआ कि भारत में शिक्षा की दशा कितनी निराशाजनक है और उसने उन्हें एक सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा की तीव्र आवश्यकता महसूस कराई।

उन्होंने लिखा - 'यदि वह (भारतीय विश्वविद्यालय व्यवस्था) जो शारीरिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराती है वह गर्हित है और नैतिक प्रशिक्षण शून्य के बराबर है, तो जो मानसिक प्रशिक्षण दिया जा रहा है वह भी परिमाण में तुच्छ और गुणवत्ता की दृष्टि से व्यर्थ है।.....पर इस वस्तु-स्थिति को बदल डालो, संस्कृति और वास्तविक ज्ञान को अनिवार्य बना दो और वही रुचिगत प्रेरणा जो अभी उसे एक व्यर्थ की शिक्षा से संतुष्ट रखती है, तब उसे संस्कृति और वास्तविक ज्ञान हेतु प्रयास करने के लिए बाध्य कर देगी.....हम भारत में इतने बर्बर हो गये हैं कि हम अपने बच्चों को बड़े ही उपयोगितावादी अभिप्राय से स्कूल भेजते हैं जिसमें तटस्थ रूप से भी ज्ञान के लिए कोई आकांक्षा का मिश्रण नहीं होता। किन्तु इसके लिए जो शिक्षा हमें मिलती है वह स्वयं ही उत्तरदायी है।'.....

१९०० के बाद श्री अरविन्द ने महाराष्ट्र और बंगाल के क्रांतिकारी दलों से सम्पर्क करना प्रारम्भ किया और अपने भाई बरिंद्र कुमार घोष और जतिन्द्रनाथ बनर्जी के सहयोग से उनके कार्य को समन्वित करने का प्रयास किया। इन्हीं की प्रेरणा से पी. मित्तर, सुरेन्द्रनाथ टैगोर, चितरंजन दास, और सिस्टर निवेदिता ने बंगाल में क्रांतिकारी गतिविधियों के लिए पहली गुप्त परिषद् शीघ्र ही गठित कर ली। यद्यपि विभिन्न दलों के बीच प्रभावकारी समन्वय का उद्देश्य पूरी तरह कारगर नहीं हो सका तो भी उनमें से कुछ ने, जैसे पी. मित्तर की 'अनुशीलन समिति' ने राष्ट्रीय आदर्श के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभाई। उनका प्रमुख अस्त्र था - अनेक शहरों और गाँवों में ऐसे केन्द्रों की स्थापना करना जहाँ नवयुवकों को बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक प्रशिक्षण दिया जाता और उन्हें भारत की स्वतंत्रता के लिए कार्य करने को प्रेरित किया जाता।

लगभग इसी समय श्री अरविंद ने एक पैम्फ़लेट 'भवानी मंदिर' लिखी जिसका उद्देश्य था 'देश की क्रांतिकारी तैयारी'। इसकी हज़ारों प्रतियाँ गुप्त रूप से वितरित की गईं। कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं -

'पुरातन माता, भारत, वास्तव में पुनर्जन्म लेने का प्रयास कर रही हैं, असह्य वेदना और आँखों में आँसू लिए हुए प्रयास कर रही हैं, पर उसका प्रयास सफल नहीं हो पा रहा।.....हमारे पास बाकी सारी

चीजें हैं, बस शक्ति-शून्य हैं, ऊर्जा का अभाव है। हमने शक्ति को त्याग दिया और इसीलिए हम शक्ति द्वारा त्याग दिए गए।

भक्ति ऊपर उठने वाली लौ है, शक्ति ईधन है। यदि ईधन की कमी है तो आग कितनी देर तक ठहर सकेगी?.....यदि भारत को अपना अस्तित्व बनाये रखना है तो उसे फिर से युवा बनना होगा। ऊर्जा के धारा-प्रवाह तरंगायित स्त्रोत उसमें उड़ेलने होंगे, उसकी आत्मा को फिर से वैसी ही बनना होगा जैसी वह पुरातन काल में थी, लहरों जैसी विशाल, शक्तिशाली, इच्छानुसार शांत अथवा विक्षुब्ध, कर्म अथवा बल का एक महासागर।'

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध बंगाली भावना की बढ़ती हुई तीव्रता से भयभीत हो कर वायसराय करजन ने १९०५ में बंगाल का विभाजन कर दिया। इस भेद के द्वारा शासन की नीति को ईमानदारी के साथ लागू करने का दोहरा उद्देश्य था, बंगाल में बढ़ते हुए राजनीतिक आंदोलन को तोड़ना और हिंदुओं तथा मुसलमानों के बीच मन-मुटाव पैदा करने के लिए मुस्लिम प्रभावी पूर्वी बंगाल का उपयोग - एक ऐसी नीति जिसकी परिणति चालीस वर्ष बाद भारत के विभाजन में होने को थी।

बंगाल ने अपने विभाजन का उत्तर व्यापक और सर्व-सम्मत विरोधों से दिया जिसमें रवीन्द्रनाथ टैगोर, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, बिपिन चंद्र पाल, अश्विनी कुमार दत्त जैसे अनेक महान व्यक्तियों ने भाग लिया। स्वदेशी का आदर्श, जिसने ब्रिटेन में बनी वस्तुओं के बहिष्कार की आवाज़ उठाई, व्यापक रूप से फैला।

मार्च १९०६ में बरिन्द्र घोष ने कुछ और लोगों के साथ मिल कर जोशीला बांग्ला साप्ताहिक 'युगांतर' प्रारम्भ किया, जिसमें श्री अरविंद ने कई लेख लिखे। अगस्त में बी.सी. पाल ने प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'बंदे मातरम्' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। श्री अरविंद उसमें शामिल हो गए और शीघ्र ही उसके संपादकत्व का भार उठा लिया, साथ ही साथ उनकी पर्दे के पीछे की गतिविधियाँ और लोगों के साथ चलती रहीं, जिनमें बाल गंगाधर तिलक और लाला लाजपतराय भी सम्मिलित थे।

मई, १९०८ तक प्रतिदिन श्री अरविंद ने नवजात राष्ट्रीय आंदोलन में प्रेरणा, तीव्रता और उद्देश्य की स्पष्टता भरने के लिए 'वन्दे मातरम्' के पृष्ठों का उपयोग किया। ब्रिटिश सत्ताधारियों, आत्म-सदाचारी आंग्ल भारतीय प्रेस और अधिकांश काँग्रेसी नरम-दल वालों के प्रचण्ड विरोध का सामना करते हुए उनका पहला काम होगा, उन्हीं के शब्दों में, 'भारत में राजनैतिक सरगर्मी का उद्देश्यपूर्ण और निर्बाध स्वराज खुले-आम घोषित करना तथा समाचार-पत्र के पृष्ठों में इस पर बार-बार ज़ोर देना।' वे भारत के पहले राजनेता थे जिन्होंने सावर्जनिक रूप से ऐसी घोषणा करने का साहस किया और इसमें उन्हें तत्काल सफलता मिली। (नेशनलिस्ट) पार्टी ने 'स्वराज' शब्द को लेकर स्वतंत्रता के अपने आदर्श को व्यक्त करने के लिए उसका उपयोग किया और शीघ्र ही वह सर्वत्र प्रचलित हो गया।.....उन वर्षों में जो सबसे बड़ी बात हुई वह थी - 'देश में एक नई चेतना का सृजन'। निम्नलिखित उद्धरण 'वन्दे मातरम्' से लिया गया है -

सितम्बर १, १९०६ - 'काँग्रेसी आंदोलन की वास्तविक नीति प्रारम्भ से ही होनी चाहिये थी - अपने झण्डे के नीचे इस विशाल देश में विद्यमान शक्ति के सभी तत्वों को एकत्र करना। ब्राह्मण, पण्डित और मुस्लिम मौलवी, जातीय संगठन और ट्रेड यूनियन, मज़दूर और कारीगर, कुली अपने काम पर और किसान अपने खेत में, इनमें से किसी को भी अपनी गतिविधियों के क्षेत्र के बाहर नहीं छोड़ना चाहिये था।'

१६ अगस्त, १९०७ को 'वन्दे मातरम्' के प्रचार-प्रसार और प्रभाव से भयभीत हो कर ब्रिटिश सरकार ने श्री अरविंद को राज-द्रोह कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार कर लिया। एक महीने बाद सरकार द्वारा यह साबित करने में असफल होने पर, कि वे ही उस भयावह समाचार-पत्र के सम्पादक थे, वे रिहा कर

दिये गए। इसी अवसर पर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने श्री अरविंद के प्रति अपनी प्रसिद्ध कविता लिखी और 'भारतीय आत्मा की स्वतंत्र वाणी का अवतार' के रूप में उनका अभिनन्दन किया।

दिसंबर२७, १९०७ को नेशनलिस्ट पार्टी ने श्री अरविंद की अध्यक्षता में अपनी कांफ्रेंस के सूरत में हुए शोर-गुल से भरे अधिवेशन में काँग्रेस के नरमदलवादियों से, उनके स्वराज, स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा की माँगों की पुन: पुष्टि करने से इंकार करने पर, अपने को अलग कर लिया। ये माँगें नौराजी की अध्यक्षता में कलकत्ता में हुए पिछले अधिवेशन में अपनाई गई थी। पूर्ण स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित करने में काँग्रेस को अभी बाईस वर्ष और लगने थे।

सूरत की घटनाओं के कुछ दिनों बाद, बड़ौदा में श्री अरविंद को पहली बार निश्चयात्मक अनुभूति हुई, निर्वाण अथवा ब्रह्म की चेतना की। इसके बाद की उनकी सारी गतिविधियाँ, जिनमें उनके भाषण और लिखित रचनाएँ भी शामिल हैं, 'मन की परम शांति' से निसृत है। उन्होंने कहा - फरवरी २०, १९०८ - 'सत्य वह चट्टान है जिसके ऊपर विश्व निर्मित है'। 'सत्येन तिष्ठते जगत्'। मिथ्यात्व कभी भी शक्ति का वास्तविक स्रोत नहीं बन सकता। जब आंदोलन के मूल में मिथ्यात्व होता है तो उसका असफल होना निश्चित है।

फरवरी १९१० के मध्य में आसन्न गिरफ़्तारी की ख़बर मिलने के बाद श्री अरविंद को चंद्रनगर जाने का आदेश मिला, जो उस समय फ़्रान्सीसी सरकार के अधीन था। 'कर्मयोगिन' के कार्यालय को तुरंत छोड़ वे दूसरे दिन सुबह चंद्रनगर पहुँच गए जहाँ वे साधना में निमग्न हो डेढ़ महीने रहे। अप्रैल ४, १९१० को श्री अरविन्द, जिनकी तलाश अंग्रेजों को अभी भी थी, गुप्त रूप से पांडिचेरी पहुँच गए। 'कर्मयोगिन' में लिखे गए एक लेख के लिए उनके विरुद्ध लगाया गया राजद्रोह का तीसरा आरोप उनकी अनुपस्थिति में असफल हो गया।

कुछ समय तक श्री अरविन्द ब्रिटिश भारत में वापस जाने की सोचते रहे, किन्तु शीघ्र उन्होंने देखा कि 'स्वाधीनता को लक्ष्य बनाने की दिशा में भारतीय राजनीति और भारत के लोगों की संपूर्ण भावना का सारा रुख बदलने के लिए काफी कुछ किया जा चुका है,' जैसा कि उन्होंने बाद में लिखा। 'इसलिए राजनीति में उनका व्यक्तिगत आक्षेप अब अपरिहार्य नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त उनके सामने सुनिश्चित आध्यात्मिक कार्य का बृहद् परिणाम उन्हें अधिकाधिक स्पष्ट होने लगा और उन्होंने देखा कि उन पर सारी शक्तियों का केंद्रीकरण आवश्यक हो गया है। किन्तु, श्री अरविन्द की राजनैतिक गतिविधि से निवृत्ति का अर्थ, जैसा कि अधिकांश लोगों ने अनुमान लगाया, यह नहीं था कि वे संसार में अथवा भारत के भविष्य में आगे कोई रुचि न रह जाने के कारण आध्यात्मिक अनुभूति की किसी ऊँचाई में खोकर निवृत्त हो चुके थे।

कहा जा सकता है कि १९१० तक वे संकुचित अर्थ वाली राजनीति से ऊपर उठ गये थे। इस तरह श्री अरविन्द के राजनीतिक दर्शन की टेक - आध्यात्मिक राष्ट्रवाद - अंत में उनको यहाँ तक ले गई कि वह राजनीति को ही त्याग कर आध्यात्मिक उन्नति के माध्यम से अन्तिम समाधान की ख़ोज में लग गये - सम्पूर्ण मानवता के लिए। सन् १९१० से १९५० तक, उनके जीवन के अन्तिम चालीस वर्ष इस महान और उच्च आदर्श को यथाशीघ्र प्राप्त करने के प्रयत्न में ही बीत गए।

निष्कर्ष - समग्र राष्ट्रीय आंदोलन की उनकी अवधारणा उनके ही शब्दों में सुन्दर अभिव्यक्ति पा सकी है - 'भारत में नये आंदोलन की शक्ति उसके परम अदर्शवाद में है। वह केवल एक आर्थिक आंदोलन नहीं है, हालाँकि वह देश के आर्थिक पुनरुत्थान के लिए प्रयत्नशील है। यह केवल एक राजनीतिक आंदोलन नहीं है हालाँकि कि उसने पूर्ण राजनीतिक स्वातंत्र्य को अपना लक्ष्य घोषित किया है। वह तो अत्यधिक आध्यात्मिक आंदोलन है और उसका उद्देश्य केवल आर्थिक जीवन की उन्नति या राजनीतिक स्वतंत्रता की

प्राप्ति नहीं, बल्कि सभी अर्थों में भारतीय पुरुष और नारी वर्गों की मुक्ति है।' कहना न होगा कि इस 'परम आदर्श' की सृष्टि में श्री अरविन्द का महान योग है।

राजनीतिक चिन्तक के रूप में उनकी अन्य उपलब्धि थी विदेशी शासन से मुक्त पूर्ण स्वातंत्र्य के आदर्श की उनकी व्याख्या और राष्ट्रीय आंदोलन को क्रांतिकारी बनाने में उनका योग।

वर्तमान् भारत के राजनीतिक क्षितिज के विचार क्षेत्र में श्री अरविन्द एक महान राजनीतिक चिन्तक थे। राष्ट्रीय आंदोलन को गूढ़ और आध्यात्मिक महत्व देने, उसके सामने पूर्ण स्वराज का प्रेरणापद आदर्श रखने, भारत की विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के तेज में नव-जीवन अनुप्राणित करने, स्वतंत्रता के आदर्श की प्राप्ति के लिए एक राजनीतिक योजना तैयार करने तथा सारे आन्दोलन को अंतर्राष्ट्रीय और मानव एकता के आदर्श के मुख्य प्रसंग में रखने का अन्यतम श्रेय उन्हीं को है।

निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि श्री अरविन्द वर्तमान् भारत के महान राष्ट्र-निर्माताओं में हैं क्योंकि राष्ट्रीय स्वातंत्र्य के उस प्रासाद की नींव डालने में उन्होंने महान् योगदान दिया जिसे महात्मा गाँधी और अन्य नेताओं ने बाद में निर्मित किया।

राष्ट्र

डॉ. तुकाराम वर्मा

तन से मन से निज चिन्तन से,
अभिनन्दन-वन्दन भारत का।
अभिलाषा यही जग में लहके-
महके यश चन्दन भारत का।।
हर उन्नति के पथ बीच सखे!
रहे अग्रिम स्यन्दन भारत का।
सुख-शांति-प्रदायक नायक हो,
वसुधा पर नन्दन भारत का।।

मानव मूल्य प्रसारण हेतु,
समर्पित जीवन-यंत्र हमारा।
लाख विरोध यहाँ फिर भी,
पहचान बना जनतंत्र हमारा।।
राष्ट्र समुन्नति हेतु सखे!
सहकार स्वभाव सुमंत्र हमारा।
केन्द्र नियंत्रित राज्य अनेक,
नियोजक है गणतन्त्र हमारा।।

जनतंत्र

रमाशंकर सिंह

'अरे, इन्हें रोको कोई,
यह भीड़ कैसी है?
अरे, ज़रा सुनो तो,
ये चीख़ कैसी है?
ये कौन लोग हैं?
देखने में तो कुलीन हैं,
किन्तु कैसे कार्यों में लीन हैं?'
'आश्चर्य!
आपने इन्हें पहचाना नहीं,
इतना भी जाना नहीं
ये हमारे आपके बीच से ही गये हैं,
पर जाकर भीड़ का हिस्सा बन गये हैं।'
'किन्तु हाँ, आप इन्हें पहचानेंगे भी कैसे,
ये हमारे बीच के होकर भी,
हो जाते हैं अज़नबी जैसे।
वर्षों बाद कभी-कभार आ जाते हैं,
चेहरा दिखा जाते हैं।
लेकिन एक विशेष मौसम में,
ये प्राय: रोज़ ही आते हैं,
सबके आगे झोली फैलाते हैं,
अपने लिए समर्थन माँगते हैं,
और बदले में,
आश्वासनों के ढेर दे जाते हैं।
यदि हमने समर्थन दे दिया,
तो जीत जाते हैं - मानो कोई जंग,
सब कुछ सिलसिलेवार बताता हूँ।
और हम ही से स्वयं का माल्यार्पण करा कर,
हमारे ही रहनुमा बन कर,
हमसे ही दूर चले जाते हैं,
हमारी पहुँच से बाहर हो जाते हैं।'
'चलिये, आपकी बात मान लेते हैं,
इतना जान लेते हैं।
परन्तु, यह भीड़,
ये शोर और चीख़ें,
यह आपाधापी, यह मारामारी?
यह कैसी व्यवस्था है?
यह कैसा तंत्र है?'
'सुनिये, आपकी शंका मिटाता हूँ,
ये लोग जहाँ एकत्रित हैं,

उसे 'सदन' कहा जाता है।
जिसे आप शोर, चीख़े,
और न जाने क्या-क्या कहते हैं,
वह 'बहस' है,
हमारी, आपकी, देश की, दुनिया की समस्याओं पर।
ये लोग हमें जो आश्वासन देकर आये हैं,
यहाँ आकर जो शपथ खाये हैं,
इनकी ओर से वे ऐसे ही निभाये जाते हैं।
सुना है,
कभी यहाँ आने वाले लोग,
सौम्यता, शुचिता, त्याग
और बलिदान के प्रतीक होते थे।
जन-जन के लिये अनुकरणीय होते थे।
कुछ अभी भी हैं ऐसे।
संभावना है कि
वे कुछ अच्छा कर सकेंगे।'
'पर ये अकेले चने
क्या ख़ाक भाड़ फोड़ सकेंगे?'
'भाई, यह जन के द्वारा,
जन का ही बनाया,
जन के लिए ही स्थापित व्यवस्था है,
जिसे आप भीड़तंत्र कह रहे हैं,
वह वास्तव में जनतंत्र है।'
'किन्तु यह ऐसे ही कब तक चलेगा?
जनतंत्र के नाम पर
भीड़तंत्र कब तक पलेगा?'
'देखिये, निराश होने की बात नहीं,
संभावनाएँ तो छिपी हैं कहीं न कहीं।
जब जन-जन जागेगा,
अपने इन रहनुमाओं से,
आश्वासनों का हिसाब माँगेगा,
तब उन्हें कुछ न कुछ करना ही पड़ेगा।
अन्यथा,
लोग उन्हें स्वत: नकारेंगे,
उनकी जगह किसी और को स्वीकारेंगे।
तब स्वयमेव बदलेगी अवस्था,
परिवर्तित होगी यह अराजक व्यवस्था,
पराजित होगा यह भीड़तंत्र,
और स्थापित होगा
सुन्दर, सुविचारित जनतंत्र।

चाँदनी चौक की जुबानी

अलका सिन्हा

'बहुत अच्छा गाती हैं आप!' मैंने कहा तो वान्या मुस्करा दी, 'धन्यवाद, मुझे संगीत बहुत प्रिय है।' अबकी बार मैं हँस पड़ी। विदेशी मूल का व्यक्ति जब हिंदी बोलता है तो वह कितना सजग और औपचारिक होता है। अनुवाद वाली भाषा, शब्दकोष से चुने हुए शब्द! फिर भी, फिरंगियों के मुँह से अपनी भाषा सुनकर अच्छा लगता है, बस इसी लालच में मैं वान्या के नज़दीक चली आई थी और उससे कुछ न कुछ बुलवाना चाह रही थी।

'हिंदुस्तान पहले भी आई हो क्या?'

'जी नहीं, पहली बार आई हूँ। मुझे भारत बहुत अच्छा लगा, मैं यहीं रहना चाहती हूँ।'

वह कुछ अटक-अटककर भले बोल रही थी, मगर उसका उच्चारण एकदम स्पष्ट था, इतना स्पष्ट जितना हिंदुस्तानियों का भी नहीं होता। मगर इसमें हैरानी की कोई बात इसलिए भी नहीं थी कि ये उन विद्यार्थियों की टीम थी जो विदेशों में हिंदी सीख रहे थे और जिन्हें विश्व स्तर की हिंदी ज्ञान-प्रतियोगिता में विजयी होने पर पुरस्कार स्वरूप भारत-भ्रमण के लिए आमंत्रित किया गया था। आज की शाम दिल्ली में उनके सम्मान में सांस्कृतिक संध्या और रात्रि भोज का आयोजन किया गया था। इस कार्यक्रम में वे भारत में हुए अपने अनुभव बाँट रहे थे। कोई बता रहा था कि वह यहाँ से पीपल के पत्तो पर गणेश जी की मूर्ति लेकर जा रहा है, तो कोई प्रेमचंद की कहानियों का संग्रह खरीद लाया है। वान्या ने बनारसी साड़ियाँ खरीदी थीं। आसमानी रंग की पटियाला सलवार और ऊँची कुरती में वह बहुत ही आकर्षक लग रही थी। सांस्कृतिक कार्यक्रम में उसने गीत सुनाया था- 'ऐ मालिक तेरे बंदे हम...।' वैसे तो यह गीत कई बार पहले भी सुना है, और गाया भी है, पर उसके मुंह से इसका अलग ही प्रभाव पड़ रहा था। रात्रि-भोज प्रारंभ हो चुका था और मैं अपने भोजन की प्लेट लेकर उसके निकट जा पहुँची थी।

'क्या कुछ देखा आपने यहाँ?'

'बहुत कुछ! मगर बहुत कुछ देखना अभी बाकी है।'

'आप नॉन-वेज नहीं लेतीं?' मैंने उसकी प्लेट की ओर देखकर पूछा।

'जी नहीं, मैं शाकाहारी हूँ।' फिर, एक पल रुककर वह आग्रह के साथ बोल पड़ी, 'मैं चाँदनी चौक देखना चाहती हूँ।

'चाँदनी चौक? क्यों?' फिर लगा जितनी देर में वह इन दो सवालों का जवाब देगी, उतना सब्र मुझमें कहाँ, इसलिए इन सवालों को वहीं छोड़ यह जानना चाहा कि वह कब तक है हिंदुस्तान में।

'कल दोपहर की उड़ान से चंडीगढ़ जा रही हूँ। मगर उससे पहले चाँदनी चौक देखना चाहती हूँ।' उसकी आवाज़ में बच्चों की-सी ठुनक थी।

'कल जा रही हो तो देखोगी कब?' मैंने समझाने की कोशिश की।

'अभी, खाना खाने के बाद।'

'अभी क्या देखोगी?'

'कुछ नहीं, बस प्रदक्षिणा कर के आ जाऊँगी।'

'मगर अभी तो कुछ भी नहीं होगा वहाँ।' मैंने खाने की प्लेट रख दी और क्वार्टर प्लेट में रसगुल्ले डालने लगी, 'तुम्हारे लिए निकालूँ?' मैंने स्नेह से पूछा तो वह मचल पड़ी, 'मुझे चाँदनी चौक जाना है, अभी इसी वक्त। दिन में समय नहीं है मेरे पास। फिर पता नहीं कब आना हो यहाँ।' उसके चेहरे पर मायूसी थी। मैं पशोपेश में पड़ गई। समझ न आया, क्या कहूँ। हॉल में निगाह दौड़ाई, कोई उसी तरफ का रहने वाला हो तो इसे उसके साथ कर दूँ -

'राजेश जी, किस तरफ रहते हैं आप?'

'गुड़गाँव।' उन्होंने बताया तो मैं समझ गई कि बात नहीं बन सकती। सामने की दीवार घड़ी दस बजा रही थी। वान्या मेरी स्थिति समझ भी रही थी और नहीं भी, 'अधिक समय नहीं लगेगा। बस, एक चक्कर काटकर लौट आएँगे।'

'आखिर ऐसा क्या देखना चाहती हो तुम वहाँ?' उसकी ये जिज्ञासा मेरी समझ से परे थी।

'कुछ नहीं, बस कहानियों में पढ़ा है वहाँ के बारे में, इसीलिए एक बार देखना चाहती हूँ।' उसकी इच्छा काफी तीव्र हो चुकी थी और वह लगभग निर्णायक स्वर में आग्रह कर रही थी। इतनी रात और चाँदनी चौक जैसे इलाके में इस उम्र की लड़की के साथ? ठीक नहीं रहेगा। मैं कहना चाहती थी, मगर शब्द गले में अटक गए। लगा, जैसे ऐसा कह देने से एक विदेशी मेहमान के सामने मेरे देश का अपमान हो जाएगा।

'अच्छा, तुम खाना तो खत्म करो, मैं कुछ सोचती हूँ।' इतना कहकर मैं दूसरी ओर बढ़ गई, अन्य बच्चों में मिक्स होने। संभव है, कुछ देर में यह बात इसके ख्याल से निकल जाए। मैं दूसरी भीड़भाड़ में खो गई। लेकिन मैं कहीं भी बैठी, वान्या मुझे हर जगह से ठीक अपनी सीध में दिखाई देती रही, इतमीनान से आइसक्रीम खाते हुए, गोया वह आश्वस्त थी मेरी व्यवस्था को लेकर।

घड़ी की सूई आगे भागती जा रही थी। बहुत समय तो मेरे पास भी न था। सभी मेहमान एक-एक कर विदा लेने लगे थे। मुझे लगा, मेरे लिए भी यही ठीक रहेगा। मैंने भी दबे स्वर में अन्य आयोजक मित्रों का अभिवादन किया और चुपचाप पिछले दरवाजे से बाहर निकल आई। मुझे थोड़ी राहत महसूस हुई। मगर अगले ही पल लगा, जैसे वान्या की आँखें मेरी पीठ पर जा चिपकी हैं, 'तुमने तो कहा था मुझे चाँदनी चौक ले जाओगी?' नहीं-नहीं, ऐसे चोरी से जाना ठीक नहीं, आखिर मेहमान है वह हमारी। पहली बार हमारे देश आई है। क्या सोचेगी, हमारे बारे में? मैं चलकर उसे समझा देती हूँ। मैं वापस पलट गई। हॉल में घुसी तो ढूँढने में देर न लगी। मुझसे नज़र मिलते ही वह मेरी ओर लपक आई, 'चलें ?'

मेरी बोलती बंद हो गई। एक साधारण-सी बात कि रात बहुत हो रही है, अभी जाना ठीक नहीं होगा। कल दिन में चलेंगे या फिर अगली बार... मगर मैं कह नहीं पा रही थी। वह चुपचाप मेरे पीछे हो ली। एकबारगी जी में आया, इसे अपने घर की तरफ ले चलूँ, द्वारका की बंद मार्किट भी चांदनी चौक की तरह ही तो लगती है, कह दूँगी यही है चाँदनी चौक! दुविधा की स्थिति में ही मैंने गाड़ी स्टार्ट कर दी। वह बच्चों की तरह चहक उठी- 'ये...s...s..s !' और उसने मेरे गले में बाँहे डाल दीं, 'बहुत अच्छी हैं आप!'

मैंने गाड़ी रिंग रोड पर निकाल ली। वह लगातार कुछ न कुछ बोले जा रही थी, इससे बेखबर कि मैं उसे सुन भी रही हूँ या नहीं। उसकी हर बात पर मैं सिर्फ मुस्करा रही थी। मुझे कुछ ध्यान नहीं, वह क्या कह रही थी। मैंने धीमी आवाज़ में स्टीरियो चला दिया। सड़क पर खास ट्रैफिक न था, मगर फिर भी मेरी गाड़ी तीसरे गियर में चल रही थी। दरअसल मैं तय नहीं कर पा रही थी कि गाड़ी किस तरफ मोड़ूँ। एक मन हिसाब लगा रहा था कि तेज स्पीड से भी निकालूँ, तो भी, तकरीबन एक घंटा जाने का और एक घंटा आने का - यानी रात के साढ़े बारह-पौने एक। दूसरा मन होशियारी सिखा रहा था, 'ये देखो, ये ही है चाँदनी चौक की मार्किट...।' शटर गिरी दुकानें और ऊँघती हुई गली। मैंने गाड़ी भीतर गली में मोड़ ली।

'ये देखो, मीना बाजार।' मैंने बोर्ड की ओर इशारा किया।

वह ताली बजाकर हँस पड़ी, 'लाजपत नगर का मीना बाजार...।' उसने नीचे लिखे पते की ओर इशारा किया तो मैं बुरी तरह झेंप गई। लगा जैसे इसने मुझे चोरी करते देख लिया हो। अपनी झेंप कैसे मिटाऊँ, अभी मैं यह तय भी न कर पाई थी कि उसने अचानक स्टीरियो की आवाज तेज कर दी, 'मुझे ये गाना बहुत पसंद है।' उसने कहा और साथ-साथ गाने लगी, 'मुझे रंग दे, मुझे रंग दे, मुझे अपने रंग विच रंग दे...।'

मैंने मान लिया था कि इसे बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता, मुझे ही इसके रंग में रँगना होगा। मैंने ईश्वर को याद किया, हमें सुरक्षित घर पहुँचा देना प्रभु! अब मैं गाड़ी उड़ाये जा रही थी।

'ये राजघाट है न... यहीं है न बापू की समाधि... और इंदिरा जी की भी... अब हम पहुँचने वाले हैं न!' वह इकतरफा संवाद बोले जा रही थी। मुझे काली सड़क के अलावा कुछ दिखाई न दे रहा था, मैं जल्दी से जल्दी चाँदनी चौक पहुँच कर उसे एक चक्कर कटवा देना चाहती थी।

'रोको! रोको!!' वह अचानक जोर से बोल पड़ी।

मैंने हड़बड़ाकर ब्रेक पर पैर मारा तो गाड़ी ठक से बंद हो गई।

'विष्णु दिगम्बर मंदिर, भाई मतिदास चौक... यहीं तो रुकना है।'

मैं जैसे नींद से जगी, 'तुम्हें कैसे पता?' मैं आंखें फाड़कर उसकी ओर देख रही थी। उसने ऊपर लगे बोर्ड की ओर इशारा किया। गाड़ी की इस तेज रफ्तार में भी वह रास्ते के सभी बोर्ड पढ़ती आ रही थी।

'यहाँ पक्षियों का अस्पताल है न!' उसने पूछा तो मैं अचकचा गई, 'हां, शायद यहीं...।'

'शायद नहीं, पक्का यहीं है,' वह पूरी तरह आश्वस्त थी, 'आप गाड़ी अंदर की सड़क पर मोड़ लीजिए... ये मंदिर के बराबर में... इधर...।'

सचमुच, वह ठीक बता रही थी। मैं हैरान थी, 'तुम पहली बार आई हो न यहाँ, चाँदनी चौक ?"

'हूं...।' उसने हामी भरी तो मुझे रोमांच हो आया - कहीं पिछले जन्म में...। मैं कुछ तय नहीं कर पा रही थी, 'तो इतना सब कैसे जानती हो यहाँ के बारे में?'

'वैभव ने बताया था।'

'वैभव कौन?'

'वैभव मेरे विश्वविद्यालय में ही पढ़ता था, फाइनल इयर में...। हमेशा चाँदनी चौक की बातें करता रहता था... यहीं रहता था, फव्वारे के पास कहीं रेलवे कॉलोनी में...' मैंने देखा, वैभव के बारे में बताते हुए उसके चेहरे पर कई तरह के भाव आ-जा रहे थे और वह उसी यूनिवर्सिटी में जा पहुँची थी जहाँ से वैभव नाम का सहपाठी उसे रोज़ इसी चाँदनी चौक की सैर कराता था। उसी ने बताया था कि जब उसके मिट्ठू तोते पर बिल्ली ने हमला किया था तब वह उसे इसी अस्पताल में लाया था और जहाँ उसके मिट्ठू ने राम-राम रटते हुए प्राण दे दिए थे...। एक पल को खामोशी रही, फिर वह पल भर में अतीत से वर्तमान की यात्रा पूरी कर बैठी। 'रात-दिन वह चाँदनी चौक के बारे में ही बताता रहता था...कान पक जाते थे सुन-सुनकर...।' उसने अपने कानों को हाथ लगाते हुए कहा तो मैं उसकी अदा पर रीझ गई, 'तो इसीलिए चाँदनी चौक आना चाहती थी तुम!' मैंने उसके गाल पर हल्की-सी चिकोटी काट ली। मेरी बात पर वह हौले से मुस्करा दी, 'दरअसल मेरे लिए तो चाँदनी चौक का मतलब ही भारत है।'

'और इसीलिए तुम भारत में रहना चाहती हो?' मेरी बात पर वह हौले से मुस्करा दी, 'इसका अहसास तो मुझे बहुत बाद में हुआ, तब तक वह विश्वविद्यालय छोड़कर जा चुका था...।'

मैंने देखा, उसका उनींदा चेहरा बेहद खूबसूरत लग रहा था। अब से पहले विदेशियों का ये ज़र्द गोरा रंग मुझे कभी सुंदर नहीं लगा, न ही उनके नैन नक्श... मगर उस वक्त वह मुझे दुनिया की सबसे खूबसूरत लड़की लग रही थी...सच, कितना खूबसूरत अहसास होता है मोहब्बत का...।

'अब कहाँ है वह?' पता नहीं यह सवाल मैं उससे पूछ रही थी या ख़ुद से। ऐसा लग रहा था जैसे मेरे भीतर भी एक किताब सदियों से बंद पड़ी है और जो आज अचानक ही कसमसाने लगी है..., उसके धुँधला गए अक्षरों में कोई चेहरा आकार लेने लगा है।

'मालूम नहीं, अब वह कहाँ है, पर भारत में नहीं है।' वान्या की आँखें खिड़की से पार देख रही थीं, 'सीताराम बाजार... यहीं लगती है न चाट-पापड़ी की दुकान...?' वान्या की आवाज़ चटपटी हो गई थी, मानो वह किसी खोमचे वाले को तलाश रही हो। तो फिर वैभव...? मैं वैभव के बारे में और जानना चाहती थी। मगर उसकी गाड़ी वैभव के स्टेशन से काफी आगे निकल चुकी थी... मुझे भ्रम हुआ था... वैभव के साथ अब शायद उसकी कोई वैसी आत्मीयता नहीं बची थी... वह तो उसके लिए भारत का एन्साइक्लोपीडिया भर था, बस। उसके मुँह से अक्सर ही उसने चाँदनी चौक का

ज़िक्र सुना था। मगर क्या किसी के ज़िक्र करते रहने भर से कोई इस क़दर बेचैन होता है, वहाँ की गलियों का चक्कर काट आने को?... और कि वह इस तरह बता सकता है - पक्षियों का अस्पताल... चाट-पकौड़ी का स्वाद?... मैंने फिर छेड़ा था वैभव का ज़िक्र, पर अब उसकी उसमें कुछ खास दिलचस्पी दिखाई न पड़ी, वह तो शायद कल्पना वाले चाँदनी चौक और इस चाँदनी चौक को ज्योमेट्री के त्रिकोणों की तरह मिलान करने में जुटी थी।

मैंने उसके चेहरे की ओर ध्यान से देखा - ज़र्द सफेद रंग... बल्कि रंगहीन सफेदी... खड़ी सूत-सी नाक और निर्विकार-सी आँखें! नहीं, ख़ूबसूरती तो हमारी भारतीय लड़कियों में होती है। तभी तो अक्सर हमारी लड़कियाँ विश्व-सुंदरी का ख़िताब जीतकर लौटती हैं... अपने देश के प्रति मेरा लगाव जागृत होने लगा था। बहुत धीमी रफ्तार में मेरी गाड़ी भीतर की गलियों का चक्कर काट रही थी, उन्हीं गलियों का, दिन के वक्त जिस सड़क पर गाड़ी चलाना तो दूर, पैदल निकलना भी सर्कस का खेल लगता है... हर तरह की किताबों की नई सड़क... ब्याह-शादी की कार्ड छपाई की दुकानें... शुद्ध घी की पराठे वाली गली... परदे-सूट, दाज-वरी की साड़ियों की गली... लग रहा था जैसे हम चाँदनी चौक के सेट पर नींद में चल रहे हों। चाँदनी चौक और बिना भीड़ के... एकदम नकली, अर्थहीन... बेजान...।

'अरे, ये क्या?' अचानक ख़ामोशी को तोड़ते हुए वान्या ने मुझे चौंका दिया।

'चाट के पत्तल हैं... ये चाट वाली गली है न ।'

'इतने सारे ! इतनी खाई जाती है चाट !'

मैंने देखा, वहाँ जूठे दोनों का एक पहाड़-सा बना हुआ था, गली के आवारा कुत्ते जिनमें मुँह मार रहे थे।

'और वो क्या है?' उसने सड़क के बीच की पटरी की ओर इशारा किया। वहाँ कई गुदड़ियाँ लिपटी पड़ी थीं।

'ये मजदूर हैं, कुछ ये ही खोमचे वाले... दिनभर की मशक्कत के बाद, थककर सो रहे हैं।' मेरी आवाज़ गले में अटक रही थी। मैं उसका ध्यान किसी और बात पर ले जाना चाहती थी, मसलन - यहाँ की साड़ियाँ बहुत मशहूर हैं... या फिर कभी दिन में आओ तो तुम्हें यहाँ की दूध-जलेबी खिलाऊँ...। मगर उसे मेरी जानकारी में कोई दिलचस्पी नहीं थी, 'ये लोग इन पटरियों पर कैसे गहरी नींद सो रहे हैं...' वह अविश्वास से देख रही थी, 'रुको न एक मिनट, मैं इनकी तस्वीर लेना चाहती हूँ।' उसने अपने गले में टँगे कैमरे को सेट करना चाहा तो मैं चीख पड़ी, 'नहीं, अब बिल्कुल नहीं रुकना यहाँ। बहुत देर हो रही है।'

आख़िर, ये विदेशी समझते क्या हैं अपने आप को? कोई भी यहाँ आता है, भीख माँगते बच्चों की तस्वीरें खींचता है और अपने देश में उसे 'भारत' के नाम से कैलेंडर बनाकर बेचता है। दिल्ली के तमाम पॉश इलाके छोड़कर यह चाँदनी चौक आई है कि इन दोने-पत्तलों की, लड़ते कुत्तों की और फुटपाथ पर सोते मजदूरों की तस्वीरें खींचकर ले जाए ताकि अपने देश में दिखा सके कि यही है भारत... भूखा- प्यासा... गरीब देश... और तौहीन कर सके मेरे देश की। मैं उसे इस हद तक छूट नहीं दे सकती थी।

'आख़िर क्या करोगी तुम इन तस्वीरों का? क्या बताओगी इनके बारे में अपने साथियों को?' मैंने अब तक ख़ुद को संयत कर लिया था और अब मैं जवाबी मुद्रा में खड़ी थी। हालाँकि अपने देश की गरीबी और लाचारी का कोई जवाब नहीं था मेरे पास, मगर फिर भी मैं उसे इस तरह मनमानी करने की छूट नहीं दे सकती थी, 'आखिर क्या ख़ास देख लिया तुमने यहाँ?' मेरे बरताव में अब रूखापन आ गया था।

उसने कैमरा वापस गले में छोड़ दिया और मेरी ओर मुख़ातिब हुई, 'यहाँ आकर मैंने देखा कि हम गलत सोचते हैं कि भोजन का मतलब स्वादिष्ट व्यंजन और मीठा पकवान होता है... देखो, ये ढेर... यानी भूख बड़ी होती है व्यंजन से।' वह जूठे दोने-पत्तलों के ढेर की तरफ इशारा कर रही थी।

'मैं गलत सोचती थी, जब अपनी मॉम से नए बेड की ज़िद कर रही थी, 'वह गुदड़ियों की तरफ देखने लगी, 'देखो, नींद बड़ी है बिस्तर और गद्दों से... ये मैंने आज जाना.... यहाँ आकर जाना... मैं आज समझी कि ज़िन्दगी का सुख, सुविधाओं में नहीं, संघर्ष में है।' वह उत्तेजित-सी बोलती जा रही थी, मानो उसके भीतर किसी नई दृष्टि ने जन्म लिया हो। मैं ख़ुद उस दृष्टि से अनजान थी। अभी तक सैकड़ों बार इस तरफ आना हुआ था, मगर मुझे तो यहाँ सिवाय

भीड़, धक्के और गंदगी के कुछ भी दिखाई न दिया। जीवन का जो फलसफा वह एक बार की यात्रा में हासिल कर बैठी, मैं उससे आज तक अनजान रही। शायद, बहुत नजदीक की चीज़ को निगाह ठीक से देख नहीं पाती, इसीलिए हमें हमारे देश में कोई आकर्षण नहीं मालूम पड़ता, जबकि आए दिन विदेशियों का हुजूम यहाँ भ्रमण के लिए आया रहता है।

मैंने गाड़ी रोक दी थी। खचाक्... खचाक्... वह तस्वीरें खींचती जा रही थी। कुछ देर बाद, वह गाड़ी में वापस लौट आई, 'चलो, अब लौट चलें।' अभिमंत्रित-सी मैंने गाड़ी स्टार्ट कर दी। उसने अपनी सीट और पीछे को सरका ली और लगभग लेट-सी गई। उसके चेहरे पर गज़ब का सुकून था। सड़क लगभग सुनसान थी, मैं गाड़ी भगाए जा रही थी... स्टीरियो बंद था, वह भी बिल्कुल खामोश थी, मगर उसके शब्द फिज़ा में गूँज रहे थे

मानव जीवन

शिवराम तिवारी 'शिव'

अपने को इंसान बनाओ तुमको भी इंसान मिलेंगे।
ध्यान करो जब निर्मल मन से तुमको भी भगवान मिलेंगे।।

मानव जीवन बड़ा अनोखा सदियों का यह शुभकर है।
कुछ तो सोच समझ ले प्राणी जीवन में क्या हितकर है।।
दुनिया में जागृति फैलाओ कितने ही अंजान मिलेंगे।
अपने को इंसान बनाओ तुमको भी इंसान मिलेंगे।।

पूर्व जन्म के कर्मों का फल आज जिसे है मिला यहाँ।
फूलों जैसा जीवन उपवन दिन प्रतिदिन है खिला यहाँ।।
सबके दिल में प्यार जगाओ कितने ही नादान मिलेंगे।
अपने को इंसान बनाओ तुमको भी इंसान मिलेंगे।।

नहीं मिलेगा ऐसा जीवन सुख सुविधा के साथ में।
कहाँ मिलेगा कैसा जीवन किस जंगल किस हाथ में।।
सबका सुंदर भाग्य बनाओ लोगों से अनुदान मिलेंगे।
अपने को इंसान बनाओ तुमको भी इंसान मिलेंगे।।

कौन जानता क्या था इसका पिछले जीवन का इतिहास।
आज समय है बना के रख लो अगले जीवन का इतिहास।।
दुनिया में कुछ बढ़कर देखो कितने ही धनवान मिलेंगे।
अपने को इंसान बनाओ तुमको भी इंसान मिलेंगे।।

भले बुरे की परख तुम्हें है कर लो जीवन का उद्धार।
जीवन है सब जीव जगत में पर नहीं बुद्धि है नहीं विचार।।
जन जन का उद्धार कराओ कितने ही बेईमान मिलेंगे।
अपने को इंसान बनाओ तुमको भी इंसान मिलेंगे।।

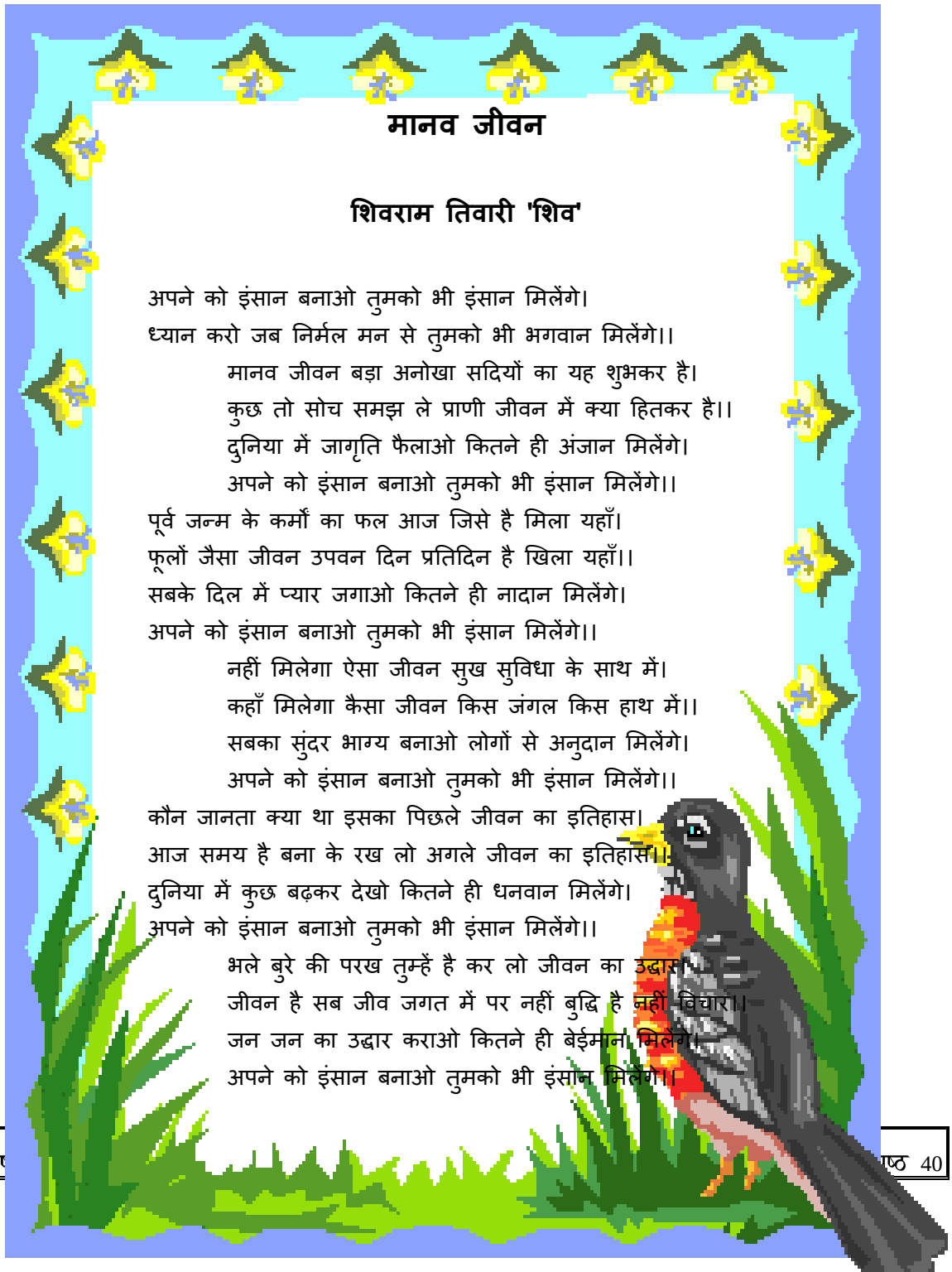

कल्पना का रहस्य लोक - रुद्र नाथ

डॉ. हेमा उनियाल

पंचकेदारों की श्रृँखला में चतुर्थ केदार के रूप में मान्य सीमान्त जनपद चमोली का रुद्रनाथ क्षेत्र प्राकृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है। समुद्रतल से ११,६०० फीट की ऊँचाई पर स्थित इस क्षेत्र में प्रकृति एवं अध्यात्म का सुन्दर समन्वय देखा व महसूस किया जा सकता है।

इस स्थल पर पहुँचने के दो मुख्य मार्ग हैं। सर्वाधिक प्रचलित मार्ग गोपेश्वर से सगर होते हुए है, जो कुल २३किलोमीटर का मार्ग है जिसमें १८किमी. की दूरी पैदल की जाती है। सगर से ५किमी. की चढ़ाई पार कर पुलना खर्क आता है जो मखमली घास का एक लंबा-चौड़ा मैदान है। गर्मियों के मौसम में पालसी अपनी भेड़-बकरियों के झुण्ड के साथ यहाँ देखे जा सकते हैं। यहाँ से आगे की यात्रा के लिए चक्रगौण्डा पहुँचना होता है। आठ किमी. की यह खड़ी चढ़ाई यात्रियों के लिए असली परीक्षा होती है। इस दुरूह चढ़ाई के मार्ग में बांज, बुरांश, खर्सू, मौरू और थुनेर के दुर्लभ वृक्षों की घनी छाया यात्रियों को सुकून देती है। इस घुमावदार चढ़ाई के उपरांत ल्वींटी बुग्याल आता है। ल्वींटी में सगर और आसपास के गाँव के लोग अपनी भेड़-बकरियों के साथ छः महीने डेरा डाले रहते हैं। यहाँ की खूबसूरत चट्टानों पर उगी घास और उस पर चरती अनेक भेड़-बकरियाँ अद्भुत दृश्य प्रस्तुत करती हैं। यहाँ पर अनेक दुर्लभ जड़ी-बूटियाँ भी पाई जाती हैं। ल्वींटी से तीन किमी. की चढ़ाई के उपरांत पनार बुग्याल आता है। दस हजार फ़ीट की ऊँचाई पर स्थित पनार, रुद्रनाथ यात्रा मार्ग का मध्य द्वार है जहाँ से रुद्रनाथ की दूरी आधी रह जाती है। यह ऐसा स्थान है जहाँ पर वृक्ष रेखा समाप्त हो जाती है और मखमली घास और फूलों के मैदान प्रकृति के अद्भुत सौंदर्य की उपमा देते हुए यात्रियों को अपने मोहपाश में बाँधते चले जाते हैं। यहाँ से हिमालय की हिमाच्छादित नंदादेवी, कामेट, तृशूली, नंदाघुंटी आदि चोटियों का भावी आकर्षक नज़ारा देखने को मिलता है। स्थानीय निवासी द्वारा बनाये गए एक छप्पर (झोंपड़ी) के नीचे चाय-पानी की व्यवस्था भी यहाँ हो जाती है। पनार से आगे बढ़ने पर पितृधार नामक स्थान आता है, यहाँ पर यात्री अपने पितरों के नाम के पत्थर रखते हैं। यहाँ पर वन देवी के मंदिर भी हैं। इससे आगे पंचगंगा नामक स्थान ढलुआ मैदान में है। उससे आगे बढ़ने पर हम फुलकंडी नामक स्थान में पहुँचते हैं। यह फूलों की सीधी पट्टी तोन्ना सैण, देवदर्शनी में जाकर समाप्त होती है। देवदर्शनी से कुछ कदम की दूरी पर नारद कुण्ड है जहाँ से रुद्रनाथ मंदिर की सीमा प्रारंभ हो जाती है। रुद्रनाथ पहुँचने का दूसरा प्राकृतिक लेकिन थोड़ा कठिन मार्ग गोपेश्वर से मण्डल, सिरोली ग्राम तथा अनसूया देवी मंदिर होते हुए है, जिसकी मण्डल से कुल पैदल दूरी १९किमी. है. इस मार्ग का कुछ भाग वन प्रदेश में होने से व मार्ग में पत्तों के गिरे होने से रास्ते का सही-सही अनुमान नहीं लगता और कुछ लोग मार्ग भटक भी जाते हैं। इसलिए मण्डल से कोई स्थानीय गाइड कर लेना सुविधाजनक हो जाता है।

रुद्रनाथ से पंचगंगा, पनार, तोली ताल, डुमक होते हुए उर्गम घाटी में भी पैदल मार्ग से प्रवेश किया जा सकता है जहाँ पंचकेदारों में मान्य कल्पेश्वर व पंचबदरी के अन्तर्गत मान्यताप्राप्त ध्यानबदरी अवस्थित हैं। ३६किमी. की यह पैदल यात्रा लगभग दो दिन में पूरी की जाती है।

प्राकृतिक सुषमा से युक्त रुद्रनाथ मंदिर एक बृहद गुफा के भीतर है जहाँ भगवान शिव रौद्र रूपी चौथे पंचकेदार के नाम से पूजित हैं। गर्भगृह के भीतर एक सवा वर्गमीटर पाषाण की वेदी में शिव का रौद्र मुखारबिंद काले पाषाण में प्रतिष्ठित है। माध्यम दीये के प्रकाश में ब्रह्म कमलों से आच्छादित शिव मुखारबिन्द के दर्शन और मंदिर पुजारी द्वारा संस्कृत श्लोकों की इस गुफा के भीतर गुंजायमान ध्वनि मन को अलौकिक आनंद से भर देती है। अगस्त-सितंबर माह में मंदिर गर्भगृह ब्रह्मकमलों से आच्छादित रहता है। यहाँ पहुँचे यात्रियों को प्रसाद के रूप में भी ब्रह्मकमलों की प्राप्ति होती है।

अत्यंत शीत के कारण मात्र ५महीने (लगभग १५मई से १७अक्तूबर) ही यहाँ विधिवत पूजा सम्पन्न होती है। रुद्रनाथ के कपाट बंद होने पर यहाँ की उत्सव मूर्ति अपने गद्दी स्थल गोपेश्वर में पूजी जाती है।

रुद्रनाथ मंदिर के परम्परागत पुजारी बड़ी निष्ठा व समर्पण भाव से शिव मुखारबिन्द (रुद्रनाथ) का बृहत श्रृँगार करते हैं। मुखारबिन्द स्वरूपी शिव अपने पुजारी की एक-एक कला व बारीकी को चुपचाप बैठे स्वीकारते हैं। इस स्थल की गरिमा, आध्यात्मिकता, प्राकृतिक सौन्दर्यता, सब कुछ अद्‌वितीय है जिसे स्वयंदृष्टा ही अनुभव कर सकता है।********

यह तुंग हिमालय मेरा है

डा श्याम सिंह शशि

'नीचे जल था ऊपर हिम था
था एक तरल तो एक सघन'
तब उतरी कामायनी यहाँ -
था प्रमुख मनुज का प्रथम जनम।
कितने पुरुरवा यहाँ जनमें -
कितनी उर्वशियाँ नाची थीं
कितनी गिरिजाएँ शिव पान
पंचानल का तप तापी थीं,
मेरे गणश का क्रीड़ांगन -
यह महा शिवालय मेरा है।
यह तुंग हिमालय मेरा है।
मेरी गंगा का अमर कोष -
मेरी जमना का परम तोष,
सतलज-रावी-ब्रह्मपुत्र सभी
जन्मीं इसकी ही पवित्र कोख
हिम का पावनतम धवल हास
ओढ़े बैठा मेरा गिरिवर,
रेशम-से बादल स्वागत में
झुक पड़ते नत-मस्तक होकर,
मेरी गोरी ऊषा का धन
सुन्दरतम आलय मेरा है
यह तुंग हिमालय मेरा है।
मेरे झरने, मेरी झीलें,
मेरे जंगल, मेरे नाले,
ऋषियों-मुनियों ने सदियों तक
अपने हाथों से थे पाले।
अपने पुरुखों की थाती को
फिर कैसे जाने दूँगा मैं,
अपनी धरती की माटी को
फिर कैसे खाने दूँगा मैं।
यह हिम किरीट पर्वत राजा -
उत्तुंग धरालय मेरा है,
यह तुंग हिमालय मेरा है।

कवियों का भोलापन

अनिल जोशी

एक आलोचक ने हाल में ही यह बयान दिया कि आजकल के कवियों में भोलापन नहीं रहा। क्या जमाना था कि कवि जिनकी मसें पूरी तरह भीगी नहीं होती थी, दाढ़ी पूरी निकली नहीं होती थी, भोले-भाले होते थे। उनके उपनाम भी ऐसे होते थे उदास, एकांत, व्यथित, निरीह वगैरह-वगैरह।

कवि प्रेम में डूबे रहते थे और सांवली-सलोनी लड़की के घर के आगे चक्कर लगाते रहते थे। जब ऐसा नहीं कर रहे होते थे तो अपने घर में चारपाई पर लेटे हुए उसके ख्वाब में खोए रहते थे और माँ-बाप की गाली खाते रहते थे। घर के लोग उन्हें आलसी, निठल्ला, निकम्मा और घर का दुर्भाग्य मानते थे जबकि मोहल्ले के लोग उन्हें रांझा, रोमियो, मजनूं वगैरह कहकर छेड़ा करते थे। उनमें प्रकृति प्रेम कुछ इस तरह था कि वो प्रायः नदी या तालाब के किनारे बैठे मिलते थे क्योंकि गांव देहात की लड़कियां वहां अक्सर कपड़े धोने, नहाने आती थीं। दूसरी तरह के कवि सर्वहारा के मसीहा थे। जो सारी रात जागते थे, दाढ़ी बढ़ाते थे, झोला लटकाते थे। दुर्भाग्य से उनका पेट साफ नहीं रहता था और ज्यादा अध्ययन की वजह से आंखें भी कमजोर रहती थीं। उनकी कविताओं में क्रांति का आह्वान बार-बार होता था। क्रांति थी कि टस से मस नहीं होती थी। इधर क्रांति चुपचाप मसीहाओं के घर में जा व्यभिचार में लिप्त हो जाती थी। उधर सिविल सर्विस की उमर चली जाती थी। प्रकाशक और आलोचक तब भी आज की तरह कृपालु थे। प्रकाशक पुस्तक छापने से पहले सौ बार नाक रगड़वा लेते थे। फिर भी उसे तीन-चार प्रतियाँ ही मिलती थी। बड़े-बड़े कान्यकुब्ज पंडित आलोचक थे जिनको संस्कृत अच्छी आती थी। वे उसकी जाति, हैसियत, कुल और सेवा भावना आदि देखकर साहित्य में उसका स्थान तय करते थे। कवि पर अमरता का भूत सवार रहता था और आलोचक, प्रकाशक, मां-बाप, पत्नी, साहुकार उसके कंधे पर बैताल की तरह सवार रहते थे और उसे जवानी में ही मार डालते थे।

बदलते हुए युग में कवि ने इस जटिलता को समझा। अब वो फुल टाईम कविता नहीं करता, पार्ट टाईम कविता करता है वैसे वो सरकारी अफसर, बाबू पत्रकार, टीचर वगैरह का काम करता है। उसने कविता की व्यावसायिक शक्ति को समझा और उसका इस्तेमाल शुरू किया। टीचरनुमा कवि अपनी पुस्तकें शिक्षा अधिकारी को समर्पित करते हैं। अपनी क्लास में टीनएजर लड़कियों को वो निराला की कविता नहीं बल्कि शायरों की शेरो-शायरी सुनाते हैं। उन्हें कविता और उसके समय और स्थान की सारी तमीज़ है। शिक्षा अधिकारी को पुस्तकें समर्पित करने का फायदा यह होता है कि स्कूलों की लाइब्रेरी में आउटडेटेड प्रेमचंद के बजाए उत्तर आधुनिक और आधुनिकोत्तर होते हुए फलां जी की कविता पुस्तक मिलती है। सरकारी अफसर कविता लिखते ही जमीन से दो फुट उपर चलने लग जाते हैं। वे सरकारी काम के समय में अपनी अधीनस्थ सुंदर महिलाओं को अपनी कविताएं सुनाते हैं। वे महिलाएं अपना सुंदर चेहरा घंटे-आध घंटे एक्सक्लुसिवली दिखाने, झूठी प्रशंसा करने और उनके काव्य की राधा बनने की एवज में दफ्तर में देर से आने व जल्दी जाने की छूट, ओवर टाइम लेने और समय-पूर्व प्रमोशन पाने के एक्सक्लुसिव राइट्स पाती हैं। इन बातों से कई मूर्ख, कर्मठ और ईमानदार कर्मचारी परेशान होते हैं पर इन भोले-भालों का कोई क्या करे। इन अफसरों की पुस्तकें प्रायः अपने से बड़े अधिकारियों को या मंत्रियों को समर्पित होती हैं। ये अपना खर्च सरकारी खरीद करवा या पुरस्कार ले पूरा करते हैं।

बाबू टाइप कवि अपने सहकर्मियों को अपनी कविता से परेशान करते रहते हैं जिनकी रुचि सस्ते चुटकलों और शेरो-शायरी में अधिक होती है। ये लोग अपनी पुस्तक प्रायः दिल पर पत्थर रख अपनी पत्नियों को समर्पित करते

हैं उसके कई कारण हैं इससे पत्नी को उनके अमर प्रेम की गलतफहमी बनी रहती और उनके दबे हुए प्रेम-प्रसंगों की तरफ ध्यान नहीं जाता, दूसरा पत्नियां इसकी वजह से पतियों को सब्जी लाने और बच्चे को पढ़ाने के लिए बाध्य नहीं करतीं और उस समय में कविता लिखने की अनुमति देती हैं। इनके लोकार्पण कार्यक्रमों में प्रायः काउंसलर, एम.एल.ए. आदि आते हैं। इन संबंधों का लाभ ये पड़ोसी से लड़ाई होने, नाली बंद होने पर खुलवाने, स्ट्रीट लाइट ठीक करवाने आदि में करते हैं। बीस लोगों के बीच में कारपोरेटर जब इन्हें पहचान लेता है और कवि जी कह कर संबोधित करता है तो ये कैसे सीने को कमीज में संभालते हैं यह तो इन्हें ही पता है। ऐसी घटनाएं बताने पर पत्नी इन्हें अविश्वास से देखती है और कवि महोदय फिर से बच्चों को पढ़ाने, सब्जी लाने के समय में कविता लिखने लग जाते हैं। सबसे खुर्राट होते हैं पत्रकार कवि। वे कविता की आत्यांतिक शक्ति को पूरी तरह जानते हैं। उनका कवि होना उन्हें अन्य पत्रकारों पर वेटेज देता है। वे चोर के पिटने की घटना में मानवीय संवेदना के इतने सारे पर्यायवाची झोंक देते हैं कि रचना मानवीयता का दस्तावेज बन जाती है। इनके मालिक भी इनसे खुश रहते हैं क्योंकि राजनेताओं की प्रशंसा में जितने विशेषण इनके पास होते हैं उतने किसी और के पास नहीं। अकादमियां इन्हें ही पुरस्कार देती हैं क्योंकि अगर वे नहीं देती हैं तो ये अकादमियों के अधिकारियों की विदेश यात्रा और टी.ए., डी.ए. बिल पर देशहित में एब्सट्रैक्ट कविता लिखना शुरू कर देते हैं। पुरस्कारों में अपना नाम जुड़वा, समितियों के सदस्यों से लेनदेन होने के बाद ये साहित्य के हित में देश हित को भुला देते हैं। बड़े सरोकारों से जुड़ने पर छोटे सरोकारों पर क्या जाना! ये अपनी कविता की चर्चा के लिए कान्यकुब्ज पंडितों या ठाकुर आलोचकों पर निर्भर नहीं जिन्होंने प्रगतिशीलता की बोतल में जातिवाद को ऐसे मिक्स किया है कि वोदका को भी पीछे छोड़ दिया है।

भोले थे निराला जी जो 'दुख ही जीवन की कथा रही' जैसी बातें लिखते थे। पंत जी को क्या मिला लिखने से? आने वाली पीढ़ी जाने वाली पीढ़ी के इशारे पर उसे कूड़ा ही कह रही है। कविता की बाजार शक्ति को समझो, बाजारवाद के मर्म को समझो। कविता की आग पर व्यावसायिकता की रोटी सेंको। भोलेपन से कविता लिखोगे तो त्रिलोचन की तरह आखिरी वक्त इलाज के लिए चन्दा ही इकट्ठा करना होगा।

वाणी-वन्दना

महेश प्रसाद पाण्डेय 'महेश'

तम तोम मिटा करके शुचि ज्ञान की,
सुन्दर ज्योति जगाती रहो।
सुन के फले-फूले समाज जिसे,
वही मंगल गान गवाती रहो।
करके हमें मोह कुपंथ से दूर,
सुपंथ का पाठ पढ़ाती रहो।
जन-मानस के मन मंदिर में,
सदा भाव नए उमगाती रहो।

शुचि सत्य के पंथ से मैं न डिगूँ,
मुझमें सद्बुद्धि अपार भरो माँ।
करता दुखी-दीन की सेवा रहूँ,
मुझको वह शक्ति प्रदान करो माँ,
उर ज्ञान प्रदीप प्रकाशित हो,
तम अज्ञता का अति शीघ्र हरो माँ।
करके कृपा भक्त 'महेश' के मस्तक,
पे अब तो निज हाथ धरो माँ।

ग़ज़ल

डॉ. दीपंकर गुप्त

अपने वतन पे लोग जो कुर्बान हो गये।
जग में सदा अमर वही इंसान हो गये।।
उन सबने देवताओं का ही पा लिया है स्थान,
जो दूसरों के वास्ते बलिदान हो गये।
सींचा जिन्होंने ख़ून से अपने ये गुलसिताँ,
आज़ादी-ए-वतन की वो पहचान हो गये।
हँस-हँसके, चूम-चूमके फाँसी पे जो चढ़े,
वो आज अपने हिन्द की इक शान हो गये।
'दीपंकर' हमको ख़ेद है इस बात का बहुत,
अब लोग उन शहीदों से अनजान हो गये।।

स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आत्म-गुंजन	(आध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन एवं संपादन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
बौछार	(संकलन एवं संपादन)
काव्य हीरक	(संकलन एवं संपादन)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख)
उपनिषद् दर्शन	(अध्यात्मिक)
काव्य-धारा	(संकलन एवं संपादन)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२
भारत
Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW
England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय
पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित